सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 6
सितम्बर : 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदु:खयो:।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्।।

सुख-दु:ख का कर्ता व्यक्ति स्वयं ही होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्ग का ही अवलम्बन लेना चाहिए, फिर भयभीत होने की कोई बात नहीं।

◆ ◆ ◆

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षका:।
रजोमोहावृतात्मान: प्रियमेव तु लौकिका:।।

परीक्षक – विवेकीजन (सारासारविचारद्वारा) ठीक-ठीक परीक्षा करके हितकर मार्ग का सेवन करते हैं, परंतु रजोगुण और तमोगुण से आवृत बुद्धि वाले लौकिक मनुष्य (हिताहित का विचार न करे तत्काल) प्रिय (मालूम होने वाले आचार आदि) का सेवन करते हैं (इसलिए दु:खी होते हैं)।

◆ ◆ ◆

सुखार्था: सर्वभूतानां मता: सर्वा: प्रवृत्तय:।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्।।

सम्पूर्ण प्राणियों की सभी चेष्टाएँ सुख- प्राप्त करने के लिए ही होती हैं और वह सुख बिना धर्माचरण के प्राप्त हो नहीं सकता, अत: धर्म में परायण रहना चाहिए।

◆ ◆ ◆

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यम:।
अजातं नैव गृण्हाति कुरु यत्नमजन्मनि।।

अरे मूर्ख (मनुष्य)! क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो? डरे हुए को क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुन: जन्म ही न लेना पड़े।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 6

श्रिया श्लिष्टो विष्णुः स्थिरचरवपुर्वेदविषयो
धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः।
गदी शंखी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः।।

(श्रीशंकराचार्य)

जो भगवती श्रीलक्ष्मी से सदा युक्त हैं, परमाकर्षक हैं, सम्पूर्ण चराचर जिनका शरीर है, जो श्रुति–संवेद्य हैं, समस्त बुद्धियों के साक्षी हैं, शुद्ध हैं, हरि (पापों एवं दु:खों के हरने वाले) हैं, दैत्य–घातक हैं, कमल–नयन हैं, शंख–चक्र–गदा और (पद्म के साथ) विमल वनमाला धारण किये रहते हैं एवं स्थिरकान्तिमय हैं, वे शरणागतवत्सल, निखिल–भुवनेश्वर भगवान् विष्णु मेरे नेत्रों के विषय हों।

सितम्बर 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) रासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 12
3. अष्टांग योग – प्रो. ऋषिराग शर्मा 15
4. श्री श्री महाप्रभु जी की महामहिमा – अमित कुमार मिश्रा 18
5. गुरु तत्व – जनक कुलश्रेष्ठ 21
6. माला के मोती – रामेश्वर खण्डेलवाल 25
7. श्री प्रभु चरणों में समर्पित – राजेश कुमार सिंह 28
8. यौगिक प्रश्नोत्तरी 29
9. भाव प्रसून – डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज 33
10. प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्य की सुरक्षा – डॉ. नरेश झा 34
11. स्वस्थ रहने की रामबाण दवा 38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय सदस्य)	: रु. 850.00

• *हमारा विशेष लेख*

योगियों का कोर्स

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

जिस प्रकार से हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के बड़े–बड़े विद्यालयों के अन्दर छात्रों के अध्ययन के लिए पहले से ही उनका पाठ्यक्रम निश्चित रहता है उसी प्रकार योग में भी उच्चतम स्थिति प्राप्त करने के लिए उनका भी अभ्यास–क्रम विधिवत विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम की तरह से ही निश्चित रहता है। हमने इससे पहले यह भली प्रकार से समझा दिया है कि योगियों की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है और उसके बाद आगे क्या–क्या अभ्यसनीय विषय हैं, यह श्री गुरूदेव जी की कृपा से सामने आता रहता है। ''सिद्धयोग'' सिद्धों की एवं श्री गुरूदेव की अनुकम्पा से ही प्राप्त हुआ करता है। ईश्वर के परम अनुग्रह को प्राप्त हुआ करता है। ईश्वर के परम अनुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य सिद्धयोग का विद्यार्थी बन पाता है और उसका अधिकारी बन जाने के बाद श्री गुरूदेव के परम अनुग्रह से इस मार्ग में उसकी प्रगति होती चली जाती है। जो लोग सिद्धयोग के विद्यार्थी बन जाते हैं और मन की एकाग्रता के साथ अन्तर–भूमिकाओं में उनका प्रवेश हो जाता है ऐसी स्थिति में योग का द्वार उनके लिए खुल जाता है। वे लोग उत्तरोत्तर उन्नति करते रहते हैं। भगवान व्यासदेव ने पातंजलियोग सूत्र के भाष्य में लिखा है:–

योगिनो योग एव उपाध्याय:।

अर्थात्– योग में प्रगति हो जाने के बाद योगी का वह योग ही गुरू बना रहता है और वह यह बतलाता रहता है:–

इयमन्तरा भूमिरियमन्तरा भूमि:।

उसके बाद यह स्थिति होगी, उसके बाद यह स्थिति होगी। ऐसे दृश्य साधकों के सामने अपने आप ही आते रहते हैं और उन दृश्यों के अनुसार यदि अपने गुरूदेव का परम कृपा पात्र है तो वह योगी साधक अन्तरायों से बचकर अपनी साधना को बढ़ाता चला जाता है और थोड़े समय में ही उसको **''अभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि''** हो जाती है।

अत: योगियों का अभ्यास क्रम, मन की एकाग्रता से प्रारम्भ होता है। अपने मन में एकाग्रता के अभ्यास को उच्चतर बनाकर संयम तक ले जाने के लिए भगवान पतंजलिदेव ने अपने अष्टांग–योग के अन्दर तीन उच्चतम साधनों का वर्णन किया है जिनको सिद्ध कर लेने

के बाद ही योगी संयम के विषय को भली प्रकार से समझ सकता है और संयम सिद्ध हो जाने पर ही उसका भूमियों में विनियोग किया जा सकता है और वस्तु की यथार्थ स्थिति को जाना जा सकता है, किन्तु उससे पहले श्री पतंजलि जी के बतलाये हुए उन तीन प्रमुख साधनों को अभ्यास में ले आना परम आवश्यकीय है।

इन तीनों साधनों का नाम धारणा, ध्यान और समाधि है। ये अष्टांग-योग के अंतरंग साधन माने जाते हैं, क्योंकि यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार अष्टांग-योग के पाँच अंग, मन की आभ्यन्तर स्थिति हुए बिना भी अभ्यास में लाये जा सकते हैं, किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि को तभी मनुष्य अपने अभ्यास में ला सकता है, जब वह अन्तःचक्षु हो चुका हो। वह बाह्य व्यापार को बन्द करके अन्तरावलोकन का अभ्यासी बन चुका हो। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीनों अंग इस प्रकार से हैं-

धारणा

भगवान पतंजलिदेव ने धारणा का लक्षण इस प्रकार से लिखा है:-

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

अर्थात्-किसी लक्ष्य स्थान में अपने चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यासदेव ने यह पंक्ति लिखी है:-

नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाऽग्रे इत्येवमादिषु, देशेषु, वाह्ये वाविषये, चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा।

अर्थात्- नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि स्थानों में बाह्य वृत्ति से या आभ्यन्तर वृत्ति से केवल वृत्ति से ही चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। जो व्यक्ति मन की एकाग्रता के अन्य साधनों का भी अभ्यास करते हुए मन की एकाग्रता के लिए लक्षीभूत स्थल पर हृदय कमल या मूर्धाज्योति आदि के अन्दर मन को एकाग्र करके धारणा का अभ्यास करते हैं, उनका वह अभ्यास स्वाध्यायपूर्वक अनवरत चलता है तो लगातार छः मास के अभ्यास के बाद यह धारणा ही ध्यान के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ध्यान चित्त की उस स्थिति का नाम है जिसमें चित्त की बाह्य वृत्ति का उपशमन हो जाने के बाद आभ्यन्तर वृत्ति का पूर्णरूपेण अभ्युदय हो जाता है। उसमें चित्त का बिल्कुल सदृश प्रवाह चलने लगता है। उसी को भगवान पतंजलि देव ने ध्यान कहा है।

ध्यान

ध्यान का लक्षण करते हुए भगवान पतंजलिदेव ने यह सूत्र लिखा है:-

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

अर्थात्- ध्येयभूत लक्ष्य स्थल पर चित्त का तैलधारावत् सदृश प्रवाह ही ध्यान

कहलाता है। इस सूत्र पर भगवान व्यासदेव जी ने भाष्य करते हुए यह वार्तिक लिखी है –

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।

अर्थात्–उस लक्ष्य स्थान में ध्येयावलम्बन भूत विषय में चित्त का अनवरत सदृश प्रवाह जिसमें कोई दूसरा ज्ञान पैदा ही न हो, चित्त की इस प्रकार की स्थिति को ध्यान कहते हैं। इस प्रकार का ध्यान जब साधक का दो या तीन घण्टे अनवरत चलने लग जाये और इसमें प्रत्ययान्तर छू भी न सके, वृत्ति बिल्कुल एकाग्र रहे तो कुछ समय के बाद यही समाधि के रूप में परिवर्तित हो जाया करता है। मनुष्य के मन की वृत्ति तदाकारित होकर तद्‌रूप हो जाया करती है, उसी का नाम समाधि है।

समाधि

समाधि का लक्षण पतंजलिदेव जी ने निम्नांकित सूत्र में प्रकट किया है–

तदेवार्थ मात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।

इस सूत्र पर व्यास जी ने निम्नांकित पंक्तियों में भाष्य लिखा है, वह इस प्रकार से है–

ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भासः प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येय स्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते।

अर्थात्–यह ध्यान ही ध्येयाकार वृत्ति में बदला हुआ प्रत्यान्तरेण अपरामृष्ट होकर जिसमें साधक अपने स्वरूप को ही भूल जाये और अपने आपको ध्येयाकार में अवस्थित समझने लगे अर्थात् उसको यह आभास न रहे कि मैं कोई यज्ञदत्त, देवदत्त, चन्द्रदत्त आदि व्यक्ति हूँ। प्रत्युत यह आभास हो कि जिसका मैं ध्यान करता हूँ वह राम, कृष्ण या शिव मैं ही हूँ और इस प्रकार स्थिति के अनवरत बढ़ जाने के बाद साधक के अन्दर अपने इष्टदेव की सिद्धियों का स्वतः प्रकाश होने लगे तो समझ लेना चाहिए कि अब यह समाधि ही हो गयी। समाधि का ही उत्कृष्ट रूप संयम कहलाता है। भगवान पतंजलिदेव ने संयम की परिभाषा इस प्रकार लिखी है–

संयम

त्रयमेकत्र संयमः।

इस सूत्र पर व्यास जी का भाष्य इस प्रकार है–

एकविषयाणि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तदस्य, त्रयस्य तांत्रिकी परिभाषा संयम इति।

अर्थात्– धारणा, ध्यान, समाधि तीनों साधन जब एक विषयक हो जायें, उनके बीच में कोई अन्तरायें न आयें, तभी संयम सिद्ध हुआ समझना चाहिये और संयम सिद्ध हो जाने के बाद ज्यों–ज्यों अभ्यास के बल से संयम की उत्कृष्ट स्थिति होती चली जायेगी तब इस प्रकार के

संयमित मन को हम जहाँ भी जगायेंगे वह उस विषय को तत्काल प्रत्यक्ष कर लेगा। ज्यों-ज्यों योगी संयम पर विजय प्राप्त करेगा, त्यों-त्यों उसको प्रज्ञालोक होता चला जायेगा। अर्थात्-समाधि प्रज्ञा बिल्कुल होती चली जायेगी। इस प्रकार संयम सिद्ध हो जाने के बाद ही योगी को संयम का उपयोग अन्यान्य भूमियों में करना चाहिये न कि उत्तरभूमियों में। जो साधक निम्न श्रेणियों के अन्दर बल पा जाता है उसकी उत्तर श्रेणियाँ अपने आप ही उत्कृष्ट हो जाया करती हैं। कदाचित् ईश्वर के परम अनुग्रह से या गुरुदेव की अनुकम्पा से योगी जितोत्तर भूमि हो जाता है। अर्थात्-संयम के ऊँचे विषयों में सफलता पा जाता है तो उसको निम्न श्रेणियों में संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती। जिस प्रकार से एक छात्र बाकायदा स्कूल की शिक्षा न पाकर अपनी स्वतन्त्रता से अध्ययन करके बी0ए0, एम0ए0 आदि परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेता है तो उसको पहली, दूसरी आदि छोटी श्रेणियों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार जितात्र भूमि योगी को अधः भूमियों में संयम की आवश्यकता नहीं रहती। वैसे इस अभ्यासक्रम से जो योगी अपने मन को संयमित कर लेता है वह ईश्वर के परमानुग्रह से उत्तरोत्तर भूमियों में भी विजय प्राप्त करता है। भगवान व्यासदेव जी ने एक श्लोक के रूप में दो पंक्ति इस प्रकार लिखी हैं:-

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्।।

अर्थात्-योगी का वह योग ही गुरु बन जाता है क्योंकि योग से ही योग चलता है, जो आलस्य रहित होकर योगाभ्यास करता है वह अवश्य समाधि को प्राप्त हो जाया करता है। जिस योगी ने अपने मन को संयमित कर लिया है उसको चाहिये कि जिस अभ्यास क्रम को हमारे पूर्व आचार्यों ने बतलाया है उन विषयों के अन्दर मन को संयमित करके अपने आपको परिपूर्णरूपेण ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा बना ले तभी वह व्यक्ति युक्तयोगी कहलाने का अधिकारी बन सकेगा।

युक्त योगी का लक्षण

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार लिखा है:-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म कांचनः।।

अर्थात्-जिसकी आत्मा ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण है और विकार रहित स्थिति में पहुँच चुकी है, जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है और जिसकी दृष्टि में लोहा, पत्थर और सोना सभी कुछ एक जैसा ही है अर्थात्-किसी में उसकी आसक्ति नहीं होती, ऐसा योगी युक्तयोगी कहलाता है। ज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सभी विषयों में संयम करके उनके यथार्थ तत्व को जानकर उन पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लेना। यही ज्ञान तृप्तात्मा का लक्षण है। इसके अतिरिक्त जिस योगी ने पूर्णरूपेण आत्म साक्षात्कार कर लिया है और विषयवासना के

गर्त से पूर्णरूपेण ऊँचा उठ चुका है, इन्द्रियों पर पूर्णाधिकार कर लिया है वही योगी युक्तयोगी कहलाता है। युक्तयोगी बनने के लिए साधक को चाहिये कि वह शास्त्रोक्त विधि से विभिन्न विषयों में संयम करता हुआ युक्त–योगिता को प्राप्त करे। भगवान पतंजलिदेव ने सम्प्रज्ञात समाधि का लक्षण लिखते हुए इस सूत्र की रचना की है:–

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।

अर्थात्– वितर्क, विचार आनन्द अस्मिता के भेद से ही सम्प्रज्ञात समाधि चार प्रकार की है।

वितर्कानुगत योग

सम्प्रज्ञात योग की पहली श्रेणी वितर्कानुगत समाधि कहलाती है। इसका अर्थ है– योगी जिस समय प्राथमिक अभ्यास शुरू करता है, उस समय वह चित्त को ठहराने के लिए स्थूल विषयों का अवलम्बन लेता है। इस अभ्यास में योगी के सामने प्रायः स्थूल विषय ही आया करते हैं। इसको इस प्रकार समझ लेना चाहिये जैसे किसी साधक ने अपने देव भगवान शिव का अथवा राम या कृष्ण का ध्यान आरम्भ किया, तो इस समाधि में उसके सामने इष्टदेव की मनुष्याकृति ही आती रहेगी और जिस समय मन इस ध्यान से विचलित होगा तो उस समय उसके सामने मनुष्य लोक के ही दृश्य अधिक आयेंगे। यह वितर्कानुगत योग सम्प्रज्ञात योग की पहली श्रेणी है। जिस समय योगी अन्तर्मुखी हो करके किसी विषय का चिन्तन करने लगता है तो उस समय उसको उत्तरोत्तर प्रगति कराने के लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति उसकी सहायक हुआ करती है। जिस समय वह अपनी पहली श्रेणी को अच्छी प्रकार से परिपक्व बना चुकता है उस समय उसके सामने द्वितीय श्रेणी के दृश्य उर–प्रेरक गुरुदेव की प्रेरणा से स्वयं ही आने लगते हैं और परिणामस्वरूप उसका यह पूर्वाभ्यास स्वतः ही छूट जाता है क्योंकि उसके अभ्यास का विषय उससे भी सूक्ष्म विचारानुगत योग का हो गया है।

विचारानुगत योग

विचारानुगत योग में मनुष्य अपने इष्टदेव के स्वरूप को मनुष्य लोक की अपेक्षा बहुत अधिक सुन्दर एवं आभामान देखने लगता है। वह यह समझता है मेरे ध्यान ध्येयावलम्ब मेरे इष्टदेव अब उत्तरोत्तर बहुत ही दिव्य छवि वाले परम रमणीक एवं सुन्दर बनते जा रहे हैं। इस द्वितीय श्रेणी के अन्दर योगी अपने इष्टदेव को देवाकृति में देखने लगता है। जब उसका यह अभ्यास परिपक्व हो जाता है उस समय उसके सामने स्वतः ही देवलोक के दृश्य आने लगते हैं। वह योगी अपने इष्टदेव को बहुत ही सुन्दर दिव्याकृति में देखता है। ऐसी स्थिति में इसके सामने देवलोक के दृश्य आने लगते हैं। कभी वह देखता है, उसके सामने देवोद्यान, नन्दनवन आदि के दृश्य आ रहे हैं। कभी–कभी देवलोक के और रमणीक दृश्य या देवलोक की सुन्दरियाँ नृत्य करती हुई सामने आती हैं। तरह–तरह की वाणियाँ सुनाई देती हैं अब तक यह साधक योगी **''मनुष्यः देवानाम् पशुः''** के अनुसार देवताओं के अधीन रहने वाला सेवक के समान

साधारण प्राणी था, किन्तु गुरुदेव की परम अनुकम्पा एवं ईश्वरानुग्रह को पाकर अब यह योगी बन गया और बड़े दिव्यात्माओं का पूज्य हो गया। यह स्थिति इस प्रकार की है, जिसमें कोई भाग्यवान गुरुदेव का लाड़ला, वीर, धीर, संयमी पुरुष ही आगे निकल पाता है, अन्यथा दैविक प्रलोभनों में आ करके अपने आपको पुनः अनिष्टों में डाल देता है। इस स्थिति में गये साधकों के लिए भगवान पतंजलिदेव का आदेश है कि :-

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मया करणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्।

अर्थात्-जिस समय योगी के सामने देवलोक के दृश्य आयें और देवता उसका प्रेमपूर्वक आह्वान करें उस समय योगी को बिल्कुल सतर्क हो जाना चाहिए। क्योंकि देवलोक के रमणीक दृश्यों में फंस करके उनका दुबारा अनिष्ट न हो जाये। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने यह आदेश दिया कि जिस समय योगी को देवता लोग दिव्य भोग दिखलाकर उसको आकर्षित करने की चेष्टा करें उस समय योगी को चाहिए कि वह देवलोक के प्रलोभनों को न देखे और देखने पर भी यदि उसने अपने आपको नियंत्रण में कर लिया है तो उस हालत में योगी के मन में यदि यह अभिमान पैदा हो जाता है कि अब मैं देवताओं का भी पूज्य हो गया हूँ इसलिए मेरी इन पर हुकूमत है और मुझे इनकी बात माननी चाहिये। ऐसा अभिमान करने से योगी को कालभय रहता है और देवताओं की बात मान करके वह वासनीय भोगों में प्रवृत्त हो जाता है तो प्रवृत्ति बढ़ जाने से फिर उसी खंदक में पड़ जाता है जहाँ से वह बड़ी कठिनता के साथ पार हुआ था। महापुरुषों के चरणों में इस प्रकार की कई घटनायें घटती रहा करती हैं। इसके उदाहरण स्वरूप एक यथार्थ घटना लिख देना चाहता हूँ जिसको पढ़कर हर व्यक्ति सचेत हो जाये और वह इनके प्रलोभन से बच करके अपना अभ्युदय करता रहे।

राधेश्याम नागा

(उपनाम रमणिगिरि नागा)

हमारे आश्रम योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाई में अकस्मात् घूमता-घामता एक नवयुवक नागा साधू आया और उसने आश्रम की नियमावलि को स्वीकार करके योगाभ्यास आरम्भ किया। श्री प्रभुजी के परम अनुग्रह को पाकर उसने बहुत जल्दी अपना अभ्युत्थान किया और थोड़े ही समय के अन्दर योग की द्वितीय श्रेणी विचारानुगत में वह प्रवेश कर गया। उसके ध्यान में भगवान शिव के लीला स्थल एवं अन्य सत्पुरुषों की अनुभूतियाँ हुआ करती थीं। शनैः-शनैः अभ्यास से यह स्थिति आती गयी कि उसने देवलोक के सुन्दर दृश्य देखने आरम्भ कर दिये। वह कभी देवेन्द्र लोक में जाकर उनके रमणीक उद्यान और लीला-स्थलों को देखता, कभी देवांगनाओं की नृत्य कलाओं को देखता और कभी रसायनों का अनुभव किया करता था। शनैः-शनैः वहाँ की नृत्य कलाओं को देखने का वह अभ्यासी हो गया। उसका स्वर्गीय उपभोगों में आकर्षण बढ़ गया और देव सुन्दरियाँ उसका मान करने लगीं। उसने एक बहुत सुन्दर कन्या को देखा जिसको देखकर उसका मन उसकी ओर आकर्षित हो

गया। ऐसी स्थिति होने पर देवताओं ने उसको परामर्श दिया कि यह देवकन्या तुम्हारे लिए बहुत दिनों से तप कर रही है। यह सोचती है कि कब तुम मनुष्य लोक को छोड़कर इस दिव्य लोक में आकर रहोगे सो अभी तक इस प्रकार का कोई संयोग नहीं हो पाया। अब परम गुरुदेव की अनुकम्पा को पाकर तुम्हारा परम पुण्य बढ़ गया है और इस लोक में आ गये हो इससे अच्छा तुम्हारे लिए और कोई स्थान नहीं है। गुरुदेव के चरणारविन्द में जाकर तुमने प्राप्त करने योग्य वस्तु को पा लिया है। इसलिए अब इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे गुरुदेव तुम्हें यहाँ आने से रोकते होंगे, इसलिए तुम आज ही आश्रम छोड़कर कुसुम सरोवर पर जा करके तप करो। उसके फलस्वरूप तुम इसी दिव्यलोक में आ जाओगे या यह देवकन्या ही वहाँ प्रकट होकर वहीं पुष्प–मालायें पहनायेगी। परिणामस्वरूप वह उत्तम साधक उन प्रलोभनों में आकर आश्रम से चला गया। देवलोक का अतिथि तो वह नहीं बन पाया किन्तु अन्यान्य सम्पर्कों से उसका पतन अवश्य हो गया और अपनी उच्चतम स्थिति से पुनः साधारण मनुष्य लोक का साधारण मनुष्य ही रह गया। इसलिए भगवान पतंजलिदेव ने आदेश दिया है:–

स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात।।

यह सम्प्रज्ञात योग की दूसरी श्रेणी है जिसमें योगी के सामने देवलोक के दिव्य दृश्य सामने रहा करते हैं और प्रबल प्रलोभन उसके सामने आया करते हैं। किन्तु श्री गुरुदेव का परम कृपा पात्र इन सब विघ्न–बाधाओं से बचकर अपने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कदम बढ़ाता चला जाता है और शनैः–शनैः अपने परम लक्ष्य को अवश्य पा लेता है। इससे आगे योग की तृतीय श्रेणी है–आनन्दानुगत योग।

नन्दानुगत योग

इस समाधि में बुद्धि से परम पवित्र धर्म प्रकट होते हैं। सत्व शुद्धि होकर मनुष्य विवेक ख्याति की ओर बढ़ता है। उसके रोग शोक नष्ट हो जाते हैं, पवित्र प्रेम, ज्ञान, धर्म और दया का पूर्ण उदय हो जाता है। योगी अपने आपको सर्वथा आनन्द रूप में देखने लगता है। अब उसका लक्ष्य अखण्ड भू–मण्डलाकार व्यापक तेज रह जाता है। जिस इष्टदेव का अभी तक चिन्तन किया था, उसको अणु परमाणुओं में ओत–प्रोत देखने लगता है। यह परम सुख है इसको पा करके योगी और कुछ भी पाने की इच्छा नहीं रखता। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार वर्णन किया है–

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धि ग्राह्य मतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलतितत्वतः।।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

अर्थात्–ये आत्यन्तिक सुख है और केवल मात्र बुद्धिग्राही है, अतीन्द्रिय है। इस स्थिति

में जाकर मनुष्य पतन से परे हो जाता है और वह विचलित नहीं होता। यह ऐसा सुख है जिसको पाकर के योगी और कुछ पाना नहीं चाहता और बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता। हमेशा आनन्दमग्न रहा करता है। यहाँ अपने आप ही युक्तता होने लगती है और इस समाधि में समाधिस्थ होकर योगी प्राणी मात्र के अन्दर अपने आपको और प्राणीमात्र को अपने अन्दर देखने लगता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से स्वयं कहा है:–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं चमयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति।।

अर्थात्–जो प्राणी मात्र में अपने आपको देखता है और अपने अन्दर प्राणीमात्र को देखता है वह युक्तात्मा है। वह कभी भी मुझसे दूर नहीं होगा। दूसरे शब्दों में जो मुझको सर्वत्र देखता है और सबको मेरे अन्दर देखता है उसके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता। इस बुद्धिग्राही सुख को पाकर के योगी अपने आप को कृतार्थ बना लेता है। इससे आगे की चौथी श्रेणी वह है जिसमें वृत्ति निर्वाणोन्मुखी हो जाती है। उस समाधि का नाम अस्मितानुगत योग है।

अस्मितानुगत योग

अस्मितानुगत समाधि वह कहलाती है जिसमें योगी ब्रह्माण्ड भर के समस्त दृश्यों को देखकर शान्त हो जाता है। वृत्ति केवलमात्र एक शेष रह जाती है जिसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहा करते है। इस स्थिति के योगी की स्थिति भजन करती है, अस्मि, अस्मि, अस्मि अहमेवास्मि अर्थात्–मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ यह सब कुछ मैं हूँ। इस समाधि में योगी को दो विशेष प्रकार की ताकतें उपलब्ध होती हैं, पहली ताकत उसकी बुद्धि ऋतम्भरा बन जाती है। भगवान पतंजलिदेव कहते है:– .

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।

तस्मिन् समाहित चित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या ऋतम्भरेति संज्ञा भवति, अन्वर्था च सा सत्यमेव बिभर्ति, न तत्र विपर्यासगन्धोऽस्तीति।

अर्थात्–इस समाधि में जो योगी की बुद्धि पैदा होती है वह अन्वर्था अर्थात् सत्य को धारण करने वाली ही होती है। योगी जो कुछ सोचता है वह सत्य सोचता है। जो हरकत होती है वह सत्य होती है। उसके मन में जो भी संकल्प आयेगा वह वही होगा जो हो रहा होगा। यदि योगी यह विचार करता है कि उस देश में इस समय वर्षा हो रही है तो वह हो ही रही है। तभी उसके मन में यह संकल्प बनेगा। अन्यथा नहीं बनेगा। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा और सभी प्रकार के संस्कारों को रोक देती है, केवल अपने ही संस्कार इसमें शेष रहते हैं, शेष संस्कार निर्वाणोन्मुखी वृत्ति के ही होते हैं। इस स्थिति में जा करके योगी सत्य संकल्प हो जाता है। वह जो कुछ सोचता है वह होने

लगता है। यह भी एक प्रकार की सिद्धि है। इसको संकल्प सिद्धि कहते हैं। दूसरी सिद्धि चित्तनिर्माण शक्ति योगी को स्वभाव से ही प्राप्त हो जाती है। भगवान पतंजलिदेव कहते हैं:–

निर्माण चित्तान्यस्मितामात्राद्।

अस्मिता मात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माण चित्तानि करोति तत: सचित्तानि भवन्ति।

अर्थात्– इस समाधि में अपना चित्त निर्माण करके योगी हजारों जगह एक साथ जा सकता है। वह जितने चित्त बनायेगा वे सभी उसके अधीन होंगे।

ये सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ हैं, जिनको पतंजलिदेव ने स्वीकार किया है। इस प्रकार से यह योगियों का कोर्स है और सम्प्रज्ञात योगियों के लिए अभ्यासक्रम का उत्तमोत्तम साधन है। जिस क्रम से चलता हुआ योगी अवश्य ही असम्प्रज्ञात योग को प्राप्त हो जाता है। इसी साधन क्रम को हमारे अन्यान्य आचार्यों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से कहकर सर्वसाधारण के लिए सुलभ बना दिया है।

स्वास्थ्य

आजकल यह बरसात का मौसम है। पेट में मन्दाग्नि हो जाती है। पाचन शक्ति कमजोर होती है। भोजन सायंकालीन थोड़ा ही लेना चाहिए। प्राय: इस ऋतु में कब्ज, बदहजमी, गैस, आध्मान (डकार) की शिकायत हो जाती है। ऐसी में साधकों को आसन, जीवन तत्व साधन के साथ–साथ घरेलू नुस्खों का भी प्र‌योग करते रहना चाहिए। निम्न द्रव्य प्रयोग में लाने योग्य होते हैं–

1. गैस, अपच होने पर अजवाईन को भून कर गुड़ के साथ, तौला भर लेने से अवश्य लाभ होता है।
2. छोटी हरड़ को 100 ग्राम लेकर एक रात्रि गौमूत्र में भिगोयें। प्रात: निकाल कर इसे छाछ (मट्ठा) में डाल दें। दस, बारह घण्टे पड़े रहने दें। फिर इसे निकाल कर मट्ठा छान कर 10–12 घण्टे छाया में सुखायें, पश्चात् देशी घी में भून लें। फिर 1–2 दाने पान की तरह दिन में चबा लें। बहुत लाभ होगा। पेट में पड़ा हरड़ कभी नुकसान नहीं करता। खाली पेट लेने से तुरन्त पेट साफ करता है।
3. आँवले का प्रयोग वैसे कई तरह से किया जाता है। मुरब्बे के रूप में, अवलेह, रस, अचार सब्जी के रूप में प्रयुक्त होता है। वर्षा ऋतु में आँवले का चूर्ण ही लाभकारी रहता है। आँवले का चूर्ण बनाकर एक चम्मच ताजे पानी या दूध के साथ लेना चाहिए। पेट साफ करने के लिए त्रिफला का प्रयोग किया जा सकता है। दूध के साथ सोते समय लिया जा सकता है। आँवले का आयुर्वेदिक नाम धात्री है। सब प्रकार से लाभ ही करता है।

योग - वार्त्ता

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(प्रस्तुत योग–वार्ता उस समय का है जब मेरे गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज 1978 में नागपुर के योग प्रचार कार्यक्रम में गये थे। उन दिनों योग आसनों को टेलीविजन मे दिल्ली से धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के द्वारा डी.डी. । में दिखाया जाने लगा था। श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी का स्व. श्रीमती इन्दिरागांधी से निकटता होने के कारण योग के क्षेत्र में काफी बोल–बाला था। धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जी के एक सहयोगी हमारे वरिष्ठ गुरुभाई श्री हरिभक्त चैतन्य जी थे। इन दोनों महानुभावों ने योग के क्षेत्र में काफी काम किया था। श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज द्वारा आविष्कृत जीवन तत्व साधन के साथ–साथ योगासन, नेति कुंजल आदि षटकर्मो के अतिरिक्त सूक्ष्म व्यायाम का भी उस समय प्रचार किया गया। केन्द्र सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय के अन्तर्गत योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को रोगी की चिकित्सा के लिए विशेष साधन के रूप में मान्यता मिली। योग के निदेशक के पद पर ब्रह्मचारी धीरेन्द्र नियुक्त हुए तथा उपनिदेशक के रूप में हमारे गुरुभाई डॉ. नरेश कुमार ब्रह्मचारी थे। योग विभाग में तकनीकि विभाग के अध्यक्ष परम पूज्य गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज थे। उन दिनों योग प्रचार का व्यापक कार्यक्रम चलने लगा। उसी समय स्कूलों और कॉलेजों में योग को अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित किये जाने का निर्णय लिया गया। अस्तु! नागपुर में श्री गुरुदेव का एक सप्ताह का कार्यक्रम गुरुभाइयों के द्वारा रखा गया था। उस कार्यक्रम के दौरान आकाशवाणी नागपुर से केन्द्र निदेशक अपने सहयोगियों के साथ गुरुदेव से भेंट वार्ता के लिए आये। उसी भेंट वार्ता का मुख्य अंश यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।)

केन्द्र निदेशक – पूज्य महाराज जी के चरणों में हमारा शत्–शत् प्रणाम है। महाराज जी, यह बतायें कि आप का यहाँ नागपुर में आने का उद्देश्य क्या और कैसे आना हुआ?

पूज्य गुरुदेव जी– लल्ला! हमारे एक बच्चे सुरेन्द्र शिवलिहा हैं उनकी धर्मपत्नी को मानस रोग था। वह काफी परेशान थी। ये लोग हमारे आश्रम श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम में आये और वहाँ कुछ दिन रहे। वहाँ इन्हें काफी लाभ हुआ, इनको श्री प्रभुजी के चरण कमलों में श्रद्धा बन गई। इनकी यह भावना बनी कि गुरुदेव का कार्यक्रम नागपुर में कराया जाये ताकि जन सामान्य को भी लाभ मिले। इन बच्चों के आमन्त्रण पर ही हम लोग यहाँ पर योग प्रचार के लिए आये। हम चाहते हैं कि जिज्ञासु समुदाय योग सिद्धान्तों को समझ लें और इससे लाभ लें। हमारा यहाँ साईं बाबा मन्दिर में योग प्रचार का कार्यक्रम पिछले छः दिन से चल रहा है।

केन्द्र निदेशक– योग के विषय में आम आदमी को ज्यादा जानकारी नहीं है। कई प्रकार की भ्रान्तियाँ लोगों को हैं। यह भी कहा जा रहा है कि योग से साध्यासाध्य सभी रोगों को दूर किया जा सकता है। आप का योग से क्या तात्पर्य है?

पूज्य गुरुदेव जी – लल्ला! लोगों में भ्रान्तियाँ तो बहुत फैल रही हैं। लोग योग सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ते हैं। उनमें लिखा होता है कि प्राणायाम करने से योगी का आसन जमीन से ऊपर उठ जाता है। कुछ प्राणायाम सीखना चाहते हैं ताकि उनके अन्दर भी चमत्कार आ जाये उनकी भी समाज में प्रसिद्धि हो और उनको आर्थिक लाभ भी होने लगेगा। सम्मान मिलेगा। इसलिए वे लोग योग करना चाहते हैं। कुछ लोग भू–गर्भ समाधि लगाते हैं जमीन में गढ्ढा खुदवाकर अन्दर समाधि लगाते हैं। प्राण शक्ति पर थोड़ा कन्ट्रोल होता है इसलिए कुछ तो जीवित निकल आते हैं और कई जमीन के अन्दर ही मर जाते हैं। इस प्रकार की घटनाओं से लोगों में योग के प्रति अपवाद (अश्रद्धा) होता है। कुछ लोग भांग, गांजा आदि नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं ताकि उनका मन एकाग्र हो जाये। ये लोग अपने को योगी बताते हैं। नशा करने से थोड़ा बहुत मन एकाग्र तो हो जाता है किंतु नशा के उतरते ही एकाग्रता समाप्त हो जाती है। इस प्रकार से नशा करने से शरीर का बल क्षीण हो जाता है धातुयें क्षीण हो जाती हैं शरीर कमजोर हो जाता है। लल्ला! योग दो प्रकार से चलता है। एक हठयोग के द्वारा तथा दूसरा मनोलय के द्वारा। योग का सिद्धान्त है –

यत्र प्राणो लीयते तत्र मनोऽपि लीयते।

अर्थात् जहाँ प्राण लय होता है वहाँ मन भी लय हो जाता है। इसमें प्राणलय की साधना कठिन है। हर व्यक्ति हठयोग का अधिकारी नहीं होता। हठयोग का साधक महावीर्यवान होना चाहिए। दृढ़ वैराग्यवान होना चाहिए। ऐसे साधक बहुत कम होते हैं। इसलिए व्यक्ति मनोलय की साधना की ओर बढ़ें। इसके लिए स्वाध्याय करना चाहिए। ओंकार आदि परमात्मा के नाम का जाप करना स्वाध्याय कहलाता है अथवा मोक्ष दाता शास्त्रों का – उपनिषद्, गीता, रामायण आदि का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय करने से मन एकाग्र होता है जिससे अन्तः प्रकाश मिलता है रूहानी दृश्य दीखने लगते हैं दृश्य के दो भाग हैं एक तो बाहर की आँखों से देखे जाते हैं तथा दूसरा भीतर की आँखों से देखे जाते हैं। योगी लोग मन को एकाग्र करते हैं वे सम्प्रज्ञात समाधि की भूमिकाओं को प्राप्त कर लेते हैं। वितर्क, विचार, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत समाधि को पा लेते हैं। अस्मितानुगत में अस्मि, अस्मि अहमेवास्मि यह वृत्ति बनी रहती है।

अन्त में यह वृत्ति भी समाप्त हो जाती है। जिस प्रकार से अग्नि रूई के ढेर को समाप्त करके स्वयं भी शान्त हो जाती है उसी प्रकार से अस्मि वृत्ति भी शान्त हो जाती है और योगी निर्वाण पद को पा जाता है, कैवल्य मुक्ति पा जाता है।

केन्द्र निदेशक – योग विषयक अनेक पुस्तकें आजकल छप रही हैं। क्या पुस्तकें

पढ़कर योग क्रियायें कर लेनी चाहिए, इससे क्या लाभ, हानि होंगी?

पूज्य गुरुदेव जी – लल्ला! आसनों की पुस्तकें छापने का तो आजकल प्रचलन सा हो गया है। लोग आसनों के चित्र छपवा देते हैं किंतु सही विधि एवं उनके लाभ को नहीं लिखते हैं। यदि लिखते हैं तो गलत लिखते हैं। कल परसों मैं एक योग की पुस्तक देख रहा था उसमें लिखा था उच्च रक्त चाप वाले को सर्वांगासन करना चाहिए। यह बिल्कुल ठीक बात नहीं है इससे रोगी और बीमार हो जायेगा। ऐसे पुस्तकों के पढ़ने से तथा आसन करने की बजाय हानि ही होती है। कोई जीये या मरे इन लोगों को इसका ख्याल नहीं होता। यह लोग पुस्तक की कीमत काफी ज्यादा रखते हैं। इसलिए पुस्तक पढ़ कर ही योग की क्रियायें नहीं करनी चाहिए। किसी अच्छे योग के वेत्ता से ही आसन व क्रियायें सीख कर अभ्यास करना चाहिए। हम लोग यहाँ पर प्रातः काल नेति, धौति आदि षटकर्म भी कराते हैं। श्वास रोगियों को नेति, दुग्ध नेति लाभ पहुँचाता है। जिनके शरीर में जलीय अंश कम हो गया है उन्हें धोति आदि क्रियायें नहीं करानी चाहिए। उन्हें तो नासिका से दुग्धपान तथा कच्ची सब्जियाँ खिलानी चाहिए ताकि जलीय अंश की पूर्ति हो। इसलिए केवल देखा देखी क्रियायें करते हैं उनको नुकसान ही होता है–

देखा देखी साधे योग।
छीजे काया बाढ़े रोग।।

इसलिए अच्छे अनुभवी गुरु से सीख कर ही योग क्रियायें करनी चाहिए।

(क्रमशः)

साद्र आमंत्रण

सभी गुरु भाई – बहिनों को सूचित किया जाता है कि गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में दिनांक 1 से 6 अक्टूबर 2011 तक झाँसी आश्रम में एक आयोजन किया जा रहा है। जिसमें सभी गुरुभाई–बहिन आमंत्रित हैं।

स्थान : प्रभु रामलाल सिद्धयोग, भारतेन्दु पीठ, माताजी का आश्रम, राजघाट कॉलोनी के पीछे, भारत गैस गोदाम, सूर्या एजेन्सी के पीछे, नदी तट, पोस्ट– लहरगिरद, झाँसी, उत्तर प्रदेश

दिन : 1 अक्टूबर 2011 से 6 अक्टूबर 2011 तक

भवदीय

अविनाश शर्मा

अष्टाङ्ग योग

— प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

हमारे शास्त्रों का कथन है कि जीवात्मा तथा परमात्मा की भिन्नता अज्ञानमूलक है। प्रकृति से उत्पन्न स्वभाव ही उस भिन्नता का कारण है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया है कि परमात्मा का विद्यामूलक स्वभाव तथा जीवात्मा का अविद्यामूलक स्वभाव दोनों लोकों के व्यवहार के निमित्त निर्मित किये गये हैं, क्योंकि –

उपदृष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मा इति चाप्युक्तो देहे अस्मिन् पुरुषः परः।।
अनादित्वात निर्गुणत्वात् परमात्मायम व्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।

अर्थात् परमात्मा स्वयं ही प्रत्येक जीवात्मा में दूध में घी की तरह गुप्त है। उसके चार पाद अर्थात् रूप हैं। प्रथम रूप में वही उपदृष्टा है यानि वह सर्वसाक्षी है किंतु निरासक्त है, क्योंकि –

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञाता के रूप में विद्यमान होते हुए भी कर्तापन के अभाव में निर्लिप्त है, आसक्तिरहित है। निर्गुण होते हुए भी उसकी ही मायावी शक्ति से जीवात्मा के रूप में भोगभोक्ता भी वही है। द्वितीय रूप में अनुमन्ता है यानि जीवात्मा को कर्म के अनुसार फल देने वाला है, तृतीय रूप में निरपेक्ष करुणा करने वाला भरण–पोषण भर्ता भी है तथा चतुर्थ रूप में अविद्यामोहित सुख दुख का भोक्ता भी है। इसीलिए श्रुति का कथन है कि –

''सर्व हि एतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पादः''

कल्पयति आत्मनात्मानं आत्मा देवः स्वमायया।
सः एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तनिश्चयः।।
आत्मनः एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छाया।
एतस्मिन् एतदाततं मनोकृतेन आयाति अस्मिन् शरीरे।।

''छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः''

अर्थात् यह संसार के रूप में जो कुछ भी दिख रहा है अथवा अनुभव में आ रहा है, वह सब परम ब्रह्म पर आरोपित मायिक दृश्य है जिस प्रकार प्रकाशकिरणों पर आरोपित चलचित्र का संसार पर्दे पर दिखाई देता है। यह परम ब्रह्म परमात्मा चतुष्पाद है यानि चार अवस्थाओं में

प्रकाशित होता है। यह अवस्थायें है जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था तथा तुरिया अवस्था। पहली तीन अवस्थाओं में आत्मतेज से युक्त प्राण के रूप में अपनी ही माया से मोहित सा प्रकाशित होता है, जैसा कि उपनिषद् का कथन है कि

प्राणादिभिः अनन्तैस्तु भावैः एतैः विनिर्मिता।
माया ह्रि एषा तस्य देवस्य यया मोहितः स्वयम्।।

अर्थात् प्राणयुक्त अनन्त भावों से आच्छादित परमात्मा की ही यह अविद्यारूपी माया है जिसमें वह जीवात्मा के रूप में स्वय मोहित हो गया है। जीवात्मा तथा परमात्मा का यह सम्बन्ध धूप–छाया जैसा सम्बन्ध है। जिस प्रकार धूप किसी भी शरीर से तादात्म होने के बाद छाया बन जाती है तथा धूप के गुण खो देती है। इसी प्रकार परमात्मा की प्रकाशरूपी धूप जब स्थूल शरीर से तादात्म करती है तब वैश्वानररूपी छाया बन जाती है तथा सर्वज्ञता खोकर शरीर तथा शरीर से सम्बन्धित संसार की रचना, पालन पोषण तथा संहार का कार्य करती है। परमात्मा की यही प्रकाशरूपी धूप जब सूक्ष्मशरीर से तादात्म करती है तब तेजसरूपी छाया बन जाती है और स्वप्न के संसार का निर्माण, पालनपोषण तथा संहार करती हैं। इसी प्रकार जब परमात्मा की प्रकाशरूपी धूप जब कारण शरीर से तादात्म करती है तब प्राज्ञरूपी छाया बन जाती है तथा विषयरहित सुखानुभूति कराकर जागृत तथा स्वप्न के संसारों के सुख–दुःख से मुक्ति दिलाती है। इन तीनों अवस्थाओं में अविद्या का आवरण बना रहता है तथा इसी के अनुसार स्मृति प्राप्त होती है। चौथी अवस्था में किसी शरीर से तादात्म नहीं होता है। अतः तुरिया अवस्था में परमात्मा का प्रकाश धूप के रूप में ही अपनी सर्वज्ञता, देश, काल तथा वस्तु के सापेक्ष अनन्तता तथा विज्ञानस्वरूपता के साथ प्रकाशित होता है। यही जीवात्मा की मुक्तावस्था है, क्योंकि अविद्या का आवरण नष्ट हो जाता है। यही वह अवस्था है जिसमें जीवात्मा तथा परमात्मा में एकात्मता हो जाती है तथा अज्ञानजनित भेद समाप्त हो जाता है। श्रुतिशास्त्र का भी यही कथन है कि –

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशं अस्य महिमानमिति वीतशोकः।।
एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।

अर्थात् एक ही प्रकृतिरूपी वृक्ष पर आसीन जीवात्मा विषयभोग रूपी फल के स्वाद में निमग्न है और इसी भोगभावना के कारण माया के मोहजाल में फंसी हुई है तथा शोकमग्न है। उसी वृक्ष पर आसीन निरासक्त तथा साक्षीमात्र परमात्मा सदैव विद्यमान है। जब जीवात्मा युक्त योगी होकर ज्ञानचक्षु से परमात्मा की महिमा को देखती है तब परमात्मा के साथ एकात्मता का अनुभव कर अक्षयसुख प्राप्त कर लेती है। सभी प्राणियों की अन्तरात्मा एक ही परमात्मा है जोकि अपने को ही अनन्त रूपों में प्रकाशित करता है। इन रूपों का निमित्त कारण भोगवासना

है, क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि –

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगो अस्य सदसत् योनिजन्मसु।।

अर्थात् पुरुष शरीररूपी प्रकृति में स्थित होकर जब प्रकृति के विषयभोगों को भोगता है तभी यह उसके अनेक योनियों के रूप में प्रकाशित होने का कारण बन जाता है। इसीलिए उपनिषद् भी इसी सत्य को इस प्रकार प्रकट करते हैं कि –

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

अर्थात् परमात्मा ही क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न शरीररूप से व्यक्त तथा आत्मरूप से अव्यक्त संसार का भरण–पोषण करता है। जीवभाव के कारण विषयभोगों की वासना से युक्त जीवात्मा मायिक बन्धन में बंध जाती है तथा जैसे ही वह जीवात्मा अपने परमात्मस्वरूप को पहचान लेती है वैसे ही सभी बन्धनों से मुक्त हो जाती है।

विषयभोगों का सुख कर्म का परिणाम है तथा कर्म गुणों का विकार है। यह गुण तथा कर्म का सम्बन्ध पिता–पुत्र जैसा सम्बन्ध है। गुणक्रम की प्रेरणा से कर्म सम्पन्न होता है तथा कर्मफल की प्रेरणा से गुणक्रम का उदय होता है। महर्षि पतंजलि ने माया के इस गूढ़ सत्य को इस प्रकार प्रकट किया है कि – **''क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः''** अर्थात् गुणों के क्रम तथा परिमाण के अनुसार सृष्टि में पदार्थों तथा कर्मों के परिणाम प्रकट होते हैं। उनमें जो भेद तथा भिन्नता दिखाई देती है, वह गुणक्रम के भेद के कारण ही है। गुणों के इस परिमाण तथा क्रम के भेद को आत्मज्ञानी पुरुष जानते हैं और इसी कारण वह संसार में घटित होने वाली किसी भी घटना से प्रभावित नहीं होते। वस्तुतः सम्पूर्ण कर्मों का तथा उनके फलों का कर्ता तथा धर्ता प्रकृति के तीन गुण ही हैं और इसी कारण –

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणाः गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।।

अर्थात् तत्त्वज्ञानी पुरुष ही गुण तथा कर्म के विभागों का पूर्ण ज्ञाता होता है, क्योंकि उसकी ज्ञानचक्षु यह देखती रहती है कि संसाररूपी मायानगर में केवल माया के गुण ही गुणों में व्यवहार करते हैं और यह प्रक्रिया स्वतः संसार की रचना, पालनपोषण तथा संहार का कार्य करती रहती है। भगवान श्रीकृष्ण भी इसी सत्य को प्रकट करते हैं कि – **''कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते''** अर्थात् प्रकृति ही संसार के कार्य, करण तथा कर्तृत्व की हेतु है। जीवात्मा इसी कारण माया के बन्धन में है कि वह अविद्या के आवरण में अपने को ही इन सब का हेतु समझती है। यही मृगतृष्णा तथा अविद्या का अंधकार समस्त दुःखों का एकमात्र कारण है।

श्री श्री महाप्रभु जी की महामहिमा - भविष्य बद्री

– अमित कुमार मिश्रा, प्रभु श्री रामलाल योगाश्रम, शुक्लागंज (उन्नाव)
सिद्धयोग हेल्पलाइन नं. : 09044265344

श्री श्री भगवान रामलाल महाप्रभु जी की परमानुकम्पा से हिमालय की दुर्गम पहाड़ियाँ तो आच्छादित हैं ही साथ ही साथ मैदानी क्षेत्र उनकी महिमा के आलोक से देदीप्यमान हो रहा है।

इन्हीं सन्दर्भों से उद्‌भूत श्री श्री महाप्रभु जी की परम पावन तप स्थली है। भगवान श्री 'भविष्य बद्री' एक ऐसी विलक्षण योगास्थली है जिसे अनन्तकाल से ज्ञात–अज्ञात–अज्ञेय समझा जाता है, जो शरीर स्तर, मानस स्तर एवं अध्यात्म स्तर से आज भी सेव्य है।

इस सुरम्य प्रदेश की शोभा देखते ही बनती है। अन्तःकरण चतुष्टय प्रस्फुटित हो उठता है। इस परम पावन धरा में अद्‌भुत ऊर्जा का संचार होता रहता है। सुगन्धपूर्ण वातावरण, स्वच्छ आरोग्य वर्द्धक जलवायु एवं प्रकृति जनित क्षितिज, जड़ी बूटियों का अक्षय भण्डार हर क्षण महकती हुई वसुन्धरा, हिमालयाधिष्ठाता भगवान श्री श्री रामलाल महाप्रभु जी की बारम्बार वन्दना किया करती है।

शास्त्रे करते वन्दना, वेद मंत्रोच्चार।
गीता और रामायण करते प्रभु जी जय जय कार।।
वेद उपनिषद् कर सके न जिनका गुणगान।
मूरख अज्ञानी अमित कैसे करे बखान।।

आर्य ग्रन्थों में उल्लेख है कि सतयुग में महर्षि कश्यप – अदिति ने, त्रेतायुग में महर्षि अगस्त्य, महर्षि वशिष्ठ, च्यवन ऋषि ने इस तपोवन का सेवन किया। द्वापर युग में धौलागिरि की एकान्त गुफा में महाबलि भीम को हिडिम्बा से घटोत्कच की प्राप्ति हुई। गन्धमादन गिरि पर वास करते हुए श्री रामभक्त हनुमान जी का वरदहस्त लेकर अर्जुन ने आशुतोष भगवान शिव–आराधना में एक वर्ष का कठोर तप कर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। सिद्धों की भाषा में इसे ज्ञानगंग की शाखा मानते हैं। यहीं की मंगलमय दिव्य झांकी आपके सम्मुख सदृश है–

अपने श्री योग साधन आश्रम, ऋषिकेश से जोशी मठ 300 किमी. की दूरी पर अवस्थित है। यहाँ से गाड़ी (जीप या कार आदि) में जाया जा सकता है। दोनों ओर पहाड़ों की ढलान के मध्य में बहुत नीचे सतत् जल प्रवाहित होता रहता है। सर्व सुख प्रदान करने वाली पुण्य सलिला गंगा हर पल साथ ही साथ रहती है।

श्रीनगर, गोपेश्वर, देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, चमोली आदि स्थानों से होते हुए लगभग 14.30 घण्टे की यात्रा के बाद जोशी मठ मिलता है। यह पाँच हजार फीट की ऊँचाई पर बसा एक छोटा शहर है। यहाँ भारतीय सेना का बेस हेडक्वाटर है। यहाँ से माना पास व नीती पास के लिए रास्ते लगे हुए हैं। यहाँ से कुछ ही दूरी पर 'नरसिंह भगवान' का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह वही स्थान है जहाँ भक्त प्रहलाद ने तप किया था एवं भगवान नरसिंह स्वरूप में प्रकट होकर हिरण्याकश्यप का वध किया था। पाण्डवों व ऋषि मुनियों की यह स्थान तप स्थली रहा है। जोशीमठ से 45 किमी. दूर मलारी गाँव है, यहाँ से नीति गाँव तक वाहन नहीं जाते। क्योंकि आगे भारतीय सेना है एवं फिर चीन की सीमा है।

भविष्य बद्री पर्वत शिखर की चढ़ाई यहीं से प्रारम्भ होती है। लगभग तीस मिनट की चढ़ाई के उपरान्त श्री श्री महाप्रभु जी का दिव्य आश्रम 'शैलधार' में है। प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण नीचे की मंजिल पर रसोई व 3–4 कमरे एवं योगिराज श्री लाल जी सखे (श्री श्री महाप्रभु जी के शिष्य) का ध्यान कक्ष है। उनकी शिष्या योगांजली जी वर्तमान समय में यहाँ साधना रत हैं। श्री लाल जी सखे अपने सद्गुरुदेव श्री श्री महाप्रभु जी की अखण्ड ज्योति में विलीन हो गये हैं। ऊपर की मंजिल में श्री श्री महाप्रभु जी का महामंदिर है।

रात्रि के समय यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे सितारे बेहद करीब व चमकदार लग रहे हों। चारों ओर पर्वत श्रेणियों से घिरा यह स्थान दिव्य शांति व नीरवता से ओत–प्रोत है।

लगभग दो घण्टे की यात्रा (चढ़ाई) के उपरान्त 'संभाई' गाँव पड़ता है। यहाँ भी श्री श्री महाप्रभु जी का दिव्याश्रम अवस्थित है। यहाँ से 30 मिनट की चढ़ाई के उपरान्त श्री श्री महाप्रभु जी का विशाल धाम 'छाजा धाम' दिखाई पड़ता है। यह एक रमणीक स्थल है। यहाँ जंगली भालू, सुअर आदि भ्रमण किया करते हैं। अपने आश्रम में यहाँ 'नारायण जी' रहते हैं। यहाँ से लगभग 30 मिनट की चढ़ाई के उपरान्त चीड़ व देवदार के वृक्षों की श्रृंखला सी है। दस हजार फीट की ऊँचाई पर यह बद्रीनाथ धाम अवस्थित है। यहाँ पर वास्तविकता ज्ञात होती है कि अपने श्री श्री महाप्रभु जी ही धर्मावतारी, योगावतारी, हरि, शिव आदि–आदि हैं।

यहाँ अपने आश्रम में एक भक्त जी रहते है जो कि सन्यासी है एवं श्री चरणों में अपार श्रद्धा रखते हैं। मन्दिर के प्रांगण में श्री श्री महाप्रभु जी की विशालतम भव्य प्रतिमा है। जिसमें श्री श्री महाप्रभु जी वन वेष में मंद मंद मुस्कान के साथ विराजमान है।

यहाँ से कुछ ही दूरी पर भगवान बद्रीनाथ की विशाल प्रतिमा पत्थरों से स्वतः प्रकट हो रही है, जिसे चारों ओर से ढक कर मन्दिर का स्वरूप दे दिया गया है। कहते है प्रलय के उपरान्त भगवान बद्रीनाथ यहीं आकर अवस्थित हो जायेंगे।

यहाँ निर्जन स्थान पर श्री श्री महाप्रभु जी की दिव्य प्रतिमा स्थापित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। माई श्री हरिओम जी (योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज की शिष्य परम्परा से दीक्षित) ने जयपुर, दिल्ली, हरिद्वार, ऋषिकेश, जोशीमठ और पर्वत शिखर तक दुर्गम पथ

पार करते हुए जोखिम भरे इस कार्य को मूर्त रूप दिया, जो कि श्री श्री महाप्रभु जी की परमानुकम्पा एवं योगिराज श्री लाल सी सखे के आशीष के बिना संभव न था।

इसी पर्वत श्रृंखला के एक ओर बर्फ से ढका नंदा देवी पर्वत है, जो एवरेस्ट के बाद विश्व की सबसे ऊँची चोटी मानी जाती है। इसके सम्मुख एक समूचा पर्वत 'पद्मासन' की मुद्रा में अवस्थित है। यही सम्भवत: श्री श्री महाप्रभु जी की तप: स्थली है जहाँ पहुँचने का कोई मार्ग ही नहीं है। इसके दूसरी ओर बर्फ से ढकी हुई द्रोणागिरि पर्वत की श्रृंखला है, जहाँ से श्री हनुमान जी संजीवनी बूटी वाली पहाड़ी को ही उठा ले गये थे।

श्री श्री महाप्रभु जी का यह धाम भी अन्य धामों की भाँति अति पूज्यनीय एवं वन्दनीय है। जय हो उन योगाधिपति भगवान श्री रामलाल जी महाराज की, जय हो योग योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की जय हो योगिराज बाबा श्री लाल जी सखे की और जय हो श्री भविष्य बद्री धाम की।

उस परम पावन योगस्थली को बारम्बार प्रणाम।

शोक संवेदना

1. बड़े दु:ख से सूचित करना पड़ रहा है कि श्री जगदीश गर्ग (जीन्द) की धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा देवी का लम्बी बीमारी के पश्चात् 12 जुलाई को देहावसान हो गया है। इस दु:ख की बेला में परिवारिजनों को सिद्धयोग परिवार की ओर से हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हैं प्रभु इनके दु:खी हृदय को शान्ति प्रदान करें।

2. लखनऊ निवासी श्री रवीन्द जौहरी के बड़े लड़के दीपू (राजीव) का अचानक ही 14 जुलाई, गुरु पूर्णिमा से एक दिन पूर्व देहावसान हो गया है। यह सभी के लिए दु:खद बात है क्योंकि प्रिय राजीव की आयु 34–35 से अधिक की नहीं थी। यह परिवार प्रभु कृपा प्राप्त परिवार है और बहुत पुराने दीक्षित हैं बच्चे के पिता श्री भाई रवीन्द जौहरी काफी दु:ख संतप्त हैं। श्री प्रभु जी इनके मन में शान्ति दें तथा इन्हें इस महान दु:ख को सहन करने की क्षमता प्रदान करें। इस दु:ख की घड़ी में सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। प्रभु इन्हे शान्ति प्रदान करें तथा बिछुड़े आत्मा को अपने चरण शरण में रखें।

सम्पादक 'सिद्धयोग'

श्री सिद्धगुफा सवांई, आगरा

गुरु तत्व

— जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

अप्रैल मास की सिद्धयोग पत्रिका में ब्रह्म के बिन्दु, नाद, कलाओं का वर्णन किया गया था। अब इस लेख में ब्रह्म के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है–

1. ब्रह्म का निराकार स्वरूप – निराकार का अर्थ है – नि:+आकार। अर्थात् जिससे करोड़ों ब्रह्माण्डों के आकारों का निस्सरण हुआ है। यह कहलाता है, निराकार ब्रह्म। उपरोक्त बिन्दु, नाद और कलाओं से अतीत ब्रह्म को गीता में कहा है –

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन:।। 2/24

अर्थात् ब्रह्म को पृथ्वी तत्व से बनाए गये किसी भी शस्त्र से काटा नहीं जा सकता है। यह ब्रह्म अदाह्य है, क्योंकि अग्नि की दाहकता इसी ब्रह्म से प्राप्त होती है। न इसे गीला किया जा सकता है तथा न इसे वायु से सुखाया जा सकता है। यह नित्य निरंतर तीनों कालों में रहने वाला है। यह ब्रह्म सर्वत्र तथा तीनों कालों में एक रूप से विराजमान है तथा यह स्थिर स्वभाव वाला है। इसमें गमनागमन की क्रिया नहीं होती है। यह ब्रह्म अचल और स्थाणु होता हुआ भी सनातन, अनादि और अनन्त है। स्थूल सृष्टि से अतीत होने से यह देखने में भी नहीं आता है। इसका मन, बुद्धि आदि से चिंतन भी नहीं किया जा सकता है। यह अविकारी है; क्योंकि इसमें चिन्मात्र भी परिवर्तन रूप विकार उत्पन्न नहीं होता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्य:।
सर्वस्य धातारमचिन्त्य स्वरूपमादित्यवर्णं तमस: परस्तात्।।

अर्थात् यह ब्रह्म सर्वज्ञ है। सम्पूर्ण प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को जानने वाला है। यह पुराण– पुरा + नव अर्थात् पुराना होते हुए भी सदा सर्वदा नवीन ही रहता है। करोड़ों ब्रह्माण्डों की नियमित रूप से संचालन क्रिया आदि इसी ब्रह्म के अनुशासन से संचालित होती है। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम तथा महान से महान है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को धारण–पोषण करने वाला है। यह ज्ञान स्वरूप है। सूर्य, चन्द्र आदि का प्रकाश इसी से प्रकाशित होता है। उपासक इस निराकार ब्रह्म की उपासना – अहम् ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म, सोऽहम् आदि महावाक्यों के अर्थ की भावना करके करते हैं; क्योंकि शरीर को संचालित करने वाली आत्मा इसी का स्वरूप है।

2. निराकार–साकार ब्रह्म – वही ब्रह्म विवर्तरूप से निराकार होते हुए भी साकार–सगुण रूप से परिवर्तित हो गया।

सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वत: श्रुति मल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।। 13/13 गीता
सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।। 13/14 गीता

भगवान (ब्रह्म) भक्तों के लिए हाथों और पैरों वाले हैं। भक्त के द्वारा अर्पित की गई वस्तु को वहां जाकर ग्रहण करता है। कोई भी प्राणी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं है। भक्त की भावना के अनुसार जब वह उसके मस्तक पर चन्दन चढ़ाता है वहाँ उसका मस्तक है अर्थात् सर्वत्र उसका मुख है। भक्त के द्वारा मूक रूप से उसका अथवा जोर से की गई प्रार्थना को वह सुनता है। जितने ब्रह्माण्ड हैं उन सबमें उस ब्रह्म का ऐश्वर्य विद्यमान है। दूसरा भाव यह है कि सृष्टि में जितने प्राणी हैं, उन र बके हाथ, पैर, मुखादि उसी के हैं। वह ब्रह्म सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित होते हुए भी , सम्पूर्ण इ न्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करने वाला है। सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण करने वाला हो । हुए भी वह पूर्णत: आसक्ति रहित है।

ब्रह्म के इसी निराकार-साकार रूप का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी किया है।

बिनु पद चलइ सुनहि बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी बकता बड़ जोगी।।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।

– मानस 1/18/3-4

निराकार-साकार ब्रह्म की उपासना करने के लिए साधक को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा सब काल में सर्वत्र मेरे पास उपस्थित रहता है। इसलिए मैं जो भी निन्दनीय कार्य करूंगा अ वा किसी की निन्दा करूंगा तो वह परमात्मा अपनी दिव्य आँखों से मेरे उस निन्दनीय कार्य को अवश्य देखता है। तथा अपने दिव्य कानों से मेरी समस्त निन्दनीय चर्चा को श्रवण कर लेता है। इस प्रकार की भावना से साधक के मन के मल दोष तथा राग – द्वेषादि क्लेश आसानी से समाप्त हो जाते हैं और इस प्रकार की साधना से वह अपनी साधना में उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

3. सगुण-साकार ब्रह्म का स्वरूप – उस अचिन्त्य, अगोचर ब्रह्म का ही विवर्त सगुण-साकार रूप है। उसी ने पांच महाभूतों का स्वरूप धारण कर लिया है।

भूमिरापोऽनको वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा।। 7/4 गीता
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति मे पराम्।
जीवभूता महाबाहो ययेदंधार्यते जगत।। 7/5 गीता

ब्रह्मरूप भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी दो प्रकृतियां हैं। एक परा प्रकृति और दूसरी

अपरा प्रकृति। अपरा प्रकृति में भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश– ये पाँचों समष्टि रूप से महाभूत हैं और व्यष्टि रूप से मन, बुद्धि और अहंकार। ये आठ प्रकार की मेरी अपरा प्रकृति है। यही उस ब्रह्म का अक्ष+रम अर्थात् आँखों को रमायमरण करने वाला सगुण रूप है। प्राणियों के उनके कर्मानुसार प्रकृति के संघात से बने शरीरों में स्थित जीव बना आत्मा भी मेरी ही परा प्रकृति है। इस जीव ने अपरा प्रकृति को अपना मान लिया और फलतः वह जीव जन्म मरण के चक्कर में फँस गया।

यद्यपि वह ब्रह्म अशरीरी, अव्यक्त और अचिन्त्य है, फिर भी वह व्यक्त रूप से दिखाई देता है। जिस प्रकार काष्ट में अग्नि। अग्नि यद्यपि अव्यक्त है, फिर भी प्रयत्न करने पर वह व्यक्त हो जाती है। इसी प्रकार अष्टधा प्रकृति ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष और स्थूल शरीर है और वह ब्रह्म ही अपने विभिन्न रूपों में प्रगट हो गया है।

इस प्रकार ब्रह्म के स्वरूप के दो भाग हैं। 1. सूक्ष्म शरीर अर्थात् परा प्रकृति–जीवात्मा। 2. स्थूल-शरीर अर्थात् अष्टधा प्रकृति। स्थूल शरीर गौण है और सूक्ष्म शरीर ब्रह्म का मुख्य भाग है जैसे जीवात्मा इस शरीर से भिन्न माना जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी ब्रह्माण्ड से भिन्न है। 'न तेषु ते मयि' अर्थात् समष्टि सृष्टि उसमें है, परंतु ब्रह्म सृष्टि से पृथक है। वह अशरीरी है, परंतु वह उसी प्रकार है जिस प्रकार मानव शरीर में जीवात्मा। इस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डों में एक ब्रह्म ही व्याप्त है।

मन्त्र : मत्तः परतरंनान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। 7/7 गीता

अर्थात् सृष्टि में ऐसा कोई तत्व नहीं है, जिसमें ब्रह्म समाविष्ट न हो कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड उस ब्रह्म में सूत्र में माला के मणियों के समान सम्बद्ध है।

अस्टधा प्रकृति ही ईश्वर के घटक हैं। जिस प्रकार हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं, जिनसे इन महाभूतों के सूक्ष्म स्वरूपों–शब्द, स्पर्श रूप, रस और गंध की अनुभूति होती है। 1. कान आकाश महाभूत से सम्बन्धित है। आकाश का गुण शब्द है और शब्द कान से सुना जाता है। 2. त्वचा वायु से सम्बन्धित है। वायु का गुण स्पर्श है और त्वचा से स्पर्श की अनुभूति होती है। 3. नेत्र अग्नि तत्व से सम्बन्धित है। अग्नि का गुण रूप है और रूप का ज्ञान आँख से होता है। 4. रसना जल तत्व से सम्बन्धित है। रसना से ही रस की निष्पत्ति होती है। खट्टा, मीठा आदि षटरसों का ज्ञान जीभ से होता है। 5. नासिका पृथ्वी तत्व का अंग है। पृथ्वी का गुण गन्ध है और नासिका गन्ध ग्रहण करती है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी सर्वत्र व्याप्त हैं।

ये पाँचों महाभूत यद्यपि स्थूल रूप से जान पड़ते हैं या दिखाई देते हैं। परंतु उनके असली रूपों को किसी ने नहीं देखा है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उपरोक्त पाँचों तन्मात्राएँ पाँच स्थूल महाभूतों के गुण हैं। इन सूक्ष्म महाभूतों की अनुभूति होती है, किंतु देखा

नहीं जाता है। ये पाँचों सूक्ष्म महाभूत यद्यपि भिन्न प्रतीत होते हैं, वस्तुतः वे भिन्न नहीं हैं। सबमें सब सूक्ष्म महाभूत समाष्टि हैं। यथा आकाश में अन्य चारों महाभूत शामिल हैं। पंच–पंचीकृत के अनुसार प्रत्येक महाभूत में अन्य चारों महाभूत शामिल हैं। इस प्रकार ये पांचों महाभूत पृथक नहीं हैं; बल्कि एक ही हैं। इसी प्रकार सृष्टि का मूल तत्व ब्रह्म एक ही है। ब्रह्म और सृष्टि भिन्न नहीं है। एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं। 1. व्यक्त, 2. अव्यक्त।

ब्रह्म के '**एकोऽहमबहुष्यामि**' के संकल्प से जगत की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अहंकार विद्यमान है। अहं भाव के कारण ही एक ही पृथ्वी में विभिन्न गुणों के रस हैं। अहं वृत्ति के कारण ही पृथ्वी में अनेक बीज उत्पन्न होते हैं। गेहूँ के एक बीज में अपनी अहंवृत्ति के कारण ही अनेक हो जाने की प्रवृत्ति है। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्म ही सर्वत्र अनेक व्यक्त रूपों में प्रगट हो गया है। अतः ब्रह्म निराकार निर्गुण होते हुए भी सगुण साकार भी है।

सगुण–साकार ब्रह्म की उपासना करने के लिए श्रद्धा और प्रेम की अति आवश्यकता है। श्रद्धा से सब कुछ सम्भव है। श्रद्धा माता की भांति भक्त की रक्षा और पालन करती है। विश्वास कठिन से कठिन कार्य को सुगम बना देता है तथा प्रेम हृदय का वह भाव है जिससे कठोर से कठोर व्यक्ति भी पिघल जाता है फिर वह परमात्मा तो अत्यन्त दयालु है। उसकी अहैतुकी कृपा सब पर सदैव बरसती रहती है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
नित्याभियुक्तानां योग क्षेम वहाम्यहम्।। 9/22 गीता

अनन्य का तात्पर्य यह है कि भक्त के साधन और साध्य एक मात्र उसके आराध्यदेव ही हैं। अन्य किसी की शरण वह ग्रहण नहीं करता है। वह अनन्य होकर अपने इष्टदेव का चिंतन करता रहता है। जो सांसारिक वस्तुएँ और क्रियायें उस भक्त को उस भगवान से विमुख करती हैं, उनको वह सर्वथा त्याग देता है अर्थात् उस भक्त के हृदय में भौतिक पदार्थों, सांसारिक वस्तुओं में किसी प्रकार का राग–द्वेष तथा ममता–मोह भी नहीं रह जाता है। भक्त की इस स्थिति को ही पूर्ण शरणागति कहते हैं। उस भक्त का मन और बुद्धि अपने इष्टदेव ही हो जाते हैं। वह जो शुभ संकल्प करता है, विचार करता है, उसे वह भगवान का ही समझकर अपना कार्य–व्यवहार करता हुआ उस इष्ट देव के चिंतन में सदा रत रहता है। इस प्रकार जो साधक दृढ़ निश्चय से अनन्य भाव से भगवान का चिंतन करता है तो उसके कल्याण की चिंता भगवान को स्वयं रहती है। भगवान उसके पथ को अति सुगम बनाकर उसको परम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करा देते हैं।

माला के मोती

– रामेश्वर खण्डेलवाल, (दद्दु) गंगापुर सिटी

• जब हम ध्यान में बैठते है, तब हमें अपने गुरु मंत्र में इस तरह डूब जाना चाहिए कि हमारा मन शान्त हो जाय। यदि बाहर को जाता है या अन्दर कोई विचार आता है तो वहां से हटा कर अपने मंत्र में लगाना चाहिए। जब मन पूरी तरह मंत्र में लग जायेगा तो मन विचारों से मुक्त हो जायेगा, जब विचारों से मुक्त हो जाय, मन में कोई विचार ना आये तो समझना चाहिए कि हमारी साधना सही दिशा की ओर बढ़ रही है। विचार शून्य होना तो समझो अपनी स्वयं की स्थिति में होना है।

• मंत्र वह वाहन है जिसके द्वारा मन अन्तरआत्मा के द्वार तक पहुँचता है। परमात्मा से साक्षात्कार करवाता है। जीव को ईश्वर से मिलाता है। मंत्र रूपी नौका पर बैठ कर जीव अपने परमात्मा से मिलता है।

• जब मन अन्तरमुखी होता है तो बाहरी जगत छूट जाता है। मन विचारों से मुक्त हो जाता है। गहरे बैठने पर आन्तरिक क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है। जिससे हमारे बहत्तर हजार नाड़ियों का शुद्धिकरण प्रारम्भ हो जाता है। हमें विकार मुक्त कर देती है। साधक का शुद्ध कर देती है। ये सारे कार्य कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा होता है। गुरुदेव का आशीर्वाद मिलते ही ये शक्ति जागृत हो जाती है और बाहर नि..लने के लिए रास्ता साफ करती है।

• मंत्र जाप मन को शान्त करने का साधन है। मंत्र जाप से मन का मैल भी साफ हो जाता है। मंत्र का सतत् जप करने से हमारे शरीर, मन, इन्द्रिय, रोम–रोम में मंत्र समा जाता है। हम परमात्मा के समीप होते हैं। निर्विकार, निर्विचार की स्थिति पैदा होती है और समाधि की ओर बढ़ने लगते हैं।

• एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा कि ईश्वर कैसा है। गुरु एक दम शान्त व मौन होकर बैठ गया। शिष्य ने फिर वही प्रश्न किया तो गुरु ने उत्तर दिया कि तुम को जवाब मिल गया फिर भी प्रश्न कर रहे हो। शिष्य समझा नहीं तो गुरु ने कहा कि ईश्वर शान्त स्वरूप है। आनन्द स्वरूप है।

• मंत्र जाप से मन की स्थिरता बढ़ती है। मन एकाग्र होता है। मंत्र जाप में जब तक हमारा मन नहीं लगेगा तब तक मंत्र जाप करने से हमें कोई लाभ नहीं मिलेगा। मंत्र में मन लगेगा, विचारों से मुक्ति मिलेगी, मन शान्त होगा। याद रखो अगर हमारा मन शान्त है और हम अगर शमशान में भी बैठे है तो समझना कि हम स्वर्ग में बैठे है जब मन में शान्ति है वही स्वर्ग है। यदि मन में उथल–पुथल मच रही है, मन अशान्त है उस समय यदि हम मंदिर में बैठे हैं तो भी समझो

कि हम नरक में बैठे हैं। मंदिर में बैठे हुए भी अगर हमारा मन अशान्त है तो समझो कि इस समय हम नरक में बैठे हैं।

• मनुष्य के पास बहुत धन दौलत है और उसका मन यदि खराब है, विकृत है तो वह अमीर नहीं बल्कि दुनिया का सबसे गरीब व्यक्ति है। यदि मनुष्य के पास कुछ नहीं है दुनिया की नजरों में वो एक गरीब व्यक्ति है लेकिन उसका मन पवित्र है, स्वच्छ है, शुद्ध है। अच्छे विचारों वाला है, अच्छे चरित्र वाला है तो वो सबसे अधिक पूंजी वाला है। मन की पवित्रता ही सच्ची पूंजी है। मन को अच्छे विचारों वाला रखो, शुद्ध व मनन शील रखना है, यही सच्ची पूंजी है। मन से ही व्यक्ति की पहचान होती है।

• ज्ञान ही मुक्ति है और अज्ञान ही बन्धन है। जिसे आत्मज्ञान हो गया वह जीते जी मुक्त हो गया उसका सारा बन्धन कट गया। आत्मज्ञान का दूसरा अर्थ 'स्व का ज्ञान' यानि स्वयं का ज्ञान। आत्म ज्ञान के लिए वैराग्य का होना आवश्यक है। वैराग्य का अर्थ हर बार छोड़ना नहीं, संसार छोड़ना नहीं बल्कि संसार के भोगों के प्रति आसक्ति का त्याग करना है। घर–परिवार का निर्वाह करते हुए अपने को निमित्त मात्र समझना अपने अन्दर कर्ता भाव ना रखना और ना ही उनसे किसी तरह की अपेक्षा रखना, कुछ चाहत रखना। मनुष्य अपने अहंकार में जीता है अपने को कर्ता समझता है यही बन्धन है। इन्द्रियों के द्वारा भोगे जाने वाले विषयों में आसक्त होना ही मनुष्य को आत्म ज्ञान से वंचित रखता है।

• आत्मा व परमात्मा एक ही तत्व है। उसे पाना नहीं है वह प्राप्त है केवल अज्ञान से विस्मृत (अलग) दिखाई देता है। इसकी पहचान कोई सद्‌गुरु ही करा सकता है। इसके लिए शिष्य का पात्र होना जरूरी है। यानि स्वच्छ, निर्मल मन में ही ज्ञान समा सकता है। विकार मन, गन्दे विचारों वाले मन में कभी ज्ञान नहीं भरा जा सकता जैसे गन्दे पानी वाले बर्तन में यदि साफ पानी भरोगे तो वो गन्दा ही रहेगा, जब तक बर्तन की गन्दगी साफ नहीं होगी तब तक स्वच्छ पानी नहीं भरा जा सकता।

• मोक्ष क्या है और मुक्ति क्या है? जहाँ न कुछ पाने की कामना है, इच्छा है और न कुछ छोड़ने की ना राग है ना विराग, न आसक्ति है न विरक्ति ना कुछ लेना ना कुछ देना। जो कुछ मिल गया उसमें सन्तुष्ट रहना। ना मिले तो चिन्ता नहीं करना। राग द्वेष रहित, माया मोह से दूर, तेरा मेरा का कोई सम्बन्ध नहीं, अहंकार से दूर कर्तापन का ना होना ऐसी अवस्था वाले व्यक्ति ही मुक्त कहलाते हैं।

• अशान्ति के कारण–अशान्ति का कारण मन है। मन में हमेशा कामनाओं का तूफान उठता रहता है। विचारों का सिलसिला चलता रहता है। जो है उसमें सन्तुष्ट नहीं, जो नहीं है उसके लिए चिन्तित रहना। अधिक चाहने की लालसा। अपने को ऊंचा दिखाने की होड़। ये सब अशान्ति के मुख्य कारण हैं।

• स्वर्ग– नरक : जिस घर परिवार के सदस्य स्नेह से रहते हैं। प्रेम से रहते हैं। जहाँ सब

एक साथ बैठ कर भजन करते हैं। भोजन करते हैं। बड़ों का सम्मान, छोटों के साथ प्यार होता है, जहाँ औरतों का सम्मान होता है। उनकी इज्जत होती है। अतिथि का सम्मान होता है। द्वार पर आये भूखे को भोजन मिलता है। जहाँ सुबह शाम आरती का स्वर गूंजता है। वह घर स्वर्ग से भी सुन्दर है। (वहाँ देवता निवास करते हैं।

• जहाँ इसके विपरीत होता है। जिस घर में कलह, क्लेश रहता है। जहां सास–बहू–बाप–बेटे में झगड़े चलते हैं, एक दूसरे के प्रति प्रेम नहीं है। जहां आने वालों का सत्कार नहीं है वो घर नरक है।

• कहते हैं हमारा जीवन सांसों पर निर्भर है। हमारे अन्दर की श्वांस निश्चित है। यदि हम जल्दी–जल्दी श्वांस लेंगे तो जल्दी ही हमारी श्वासें खत्म हो जायेंगी और हमारा जीवन समाप्त हो जायेगा। इसलिए हमारी श्वांसो की लय धीमी–धीमी होनी चाहिए। धीमी गति की श्वांस हमको लम्बा जीवन जीने में सहायक होती है। लम्बा श्वांस लें धीमी करके छोड़ें। ये साधना योग साधना के अन्दर आती है। ध्यान प्राणायाम के द्वारा हम अपनी श्वासों पर नियंत्रण पा सकते हैं। साधारणतया एक व्यक्ति एक मिनट में 10–12 बार श्वांस–प्रश्वांस लेता है। वहीं पर ध्यान साधना करने वाला व्यक्ति अपनी श्वासों पर काबू कर लेता है। कई साधकों की श्वासें एक मिनट में एक बार ही निकलती हैं। कईयों की दो मिनटों में तीन मिनट एक–बार निकलती है। समाधि वाले व्यक्ति की सांसें समाधि के समय में पूरी तरह बन्द रहती हैं। उनकी उम्र सैंकड़ों हजारों वर्ष की होती है।

• भक्ति करने का समय मत देखो सभी समय शुभ है। साधना करने को, भक्ति करने को स्थान मत देखो, जहाँ भी बैठ कर भजन में मन लग जाए वो ही सर्वोत्तम स्थान है।

• दु:ख में जो साथ दे वो ईश्वर और सुख में जो साथ दे वो मनुष्य।

• स्नान से तन की शुद्धि, ध्यान से मन की शुद्धि, दान से धन की शुद्धि होती है।

• तुमने कब पुण्य किया इसको भूल जाओ, लेकिन कब पाप हुआ ये याद रखो।

• सुखी जीवन का राज– जो तुम्हारे पास है उसका आनन्द लो, जो नहीं है उसके पीछे मत भागो।

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

– राजेश कुमार सिंह, बलिया

दर्शन तो मिल जाए अब, यहीं ख्वाब हमारा है,
भीड़ मयखाने से ही, ये दिल भी तुझे पुकारा है।...(1)
इधर-उधर को खोजते, हसरतों के पांव मेरे,
सिर्फ तन्हाई में रात की, कभी देखा नहीं सवेरा है।...(2)
सूना-सूना है चेहरा, गम से सिसकती आँखें हैं,
उजड़ेपन में धूप भी, लगता बस अंधेरा है।...(3)
यह जीना है या मरना है, समझ में आता नहीं,
ये फेरे सांस के मेरे हैं, या गर्दिश का नजारा है।...(4)
आहट किसी के आने की, पड़ती है कानों में जब,
मन बाग-बाग हो जाता है, जैसे कदम तुम्हारा है।...(5)
कहने को तो बहुत हैं, जिंदगी के अफसाने,
मुद्दतों के बाद दिखा वो, जहां में सबसे प्यारा है।...(6)
हो योग की जमीं 'राजेश', प्रभु दर के सामने
कि मिल सकूं दिलदार से, जिसने हमें संवारा है।...(7)

यौगिक प्रश्नोत्तरी

– पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा

आश्रम का शुद्ध वातावरण है। योग–अभ्यासी लोग उठ चुके हैं। ब्रह्मचारी लोग अपनी–अपनी हठ योग की साधनाओं में नियम पूर्वक लग चुके हैं। आश्रम में ठहरा हुआ गृहस्थ समुदाय भी अपने–अपने नित्य कृत्यों से निपट करके श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार अपने–अपने आसन, बन्ध मुद्रायें आदि का अभ्यास करके जैसा जिसको आदेश था अपने अपने ध्यानाभ्यास में बैठ गये। थोड़ी देर बाद सभी नैतिक क्रियाओं से निवृत्त हो गये। श्री आनन्दकन्द प्रभु जी की आरती, पूजन एवं गीता पाठ आदि के बाद नैत्यिक सत्संग का कार्य प्रारम्भ हो गया। उनमें से एक जिज्ञासु ने आकर प्रश्न किया–

प्रश्न–हे गुरुदेव! कल के सत्संग में अपने सर्व चित्त वृत्ति निरोध को योग बतलाया था और उसके साथ ही यह भी कहा था कि सूत्र में भगवान पतंजलि देव ने 'सर्व' शब्द को ग्रहण नहीं किया इसलिए सम्प्रज्ञात समाधि जिसमें बराबर अनुभूतियाँ रहा करती हैं वह भी योग ही है। सो आप कृपा करके मुझे सम्प्रज्ञात योग ही समझाइये। वह कितने प्रकार का होता है और साधक निरोध तक कैसे पहुँच पाता है ?

'हे पुत्र! सुनो भगवान पतंजलि देव ने सम्प्रज्ञात समाधि का इस प्रकार वर्णन किया है–

वितर्क विचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः।

अर्थात् वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मितानुगत होने से सम्प्रज्ञात योग के चार भेद हैं जिनका वर्णन व्यास देव जी महाराज अपने भाष्य में निम्नांकित पंक्तियों में करते हैं–

वितर्कः – चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः, सूक्ष्मो– विचारः, आनन्दः – ह्लादः, एकात्मिका संविद – अस्मिता, तत्र प्रथमश्चतुष्टानुगतः समाधि स वितर्कः, द्वितीयो वितर्क विकलः स विचारः, तृतीयो विचार विकलः सानन्दः चतुर्थस्तद्विकलोस्मिता मात्र इति, सर्व एते सालम्बनाः समाधयः।

इनमें से वितर्कानुगत समाधि उसको कहते हैं जिसमें चित्त को ठहराने के लिए स्थूल विषयों का अवलम्ब लिया जाता है। जैसे अग्नि, जल, वायु, आकाशादि स्थूल महाभूत हैं और विचारानुगत समाधि में स्थूल महाभूतों से होने वाली सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों से होने वाला साक्षात्कार और आनन्दानुगत समाधि में योगी की आह्लादात्मिक स्थिति और उसके बाद अस्मितानुगत योग में केवल मात्र अस्मि प्रत्यय का आभास होता है। सम्प्रज्ञात समाधि अन्य यौगिक भेदों की स्थिति में योगी को स्वतः ही सिद्ध होती चली जाया करती है। बात तो केवल मात्र एक है मनुष्य

को अपने अभ्यास से पीछे नहीं हटना चाहिए इसके बाद 'योगिनो योग एव उपाध्याय:' अर्थात् योगी का योग ही गुरु बन जाया करता है जैसे वह सर्व शक्तिमान आदि गुरु परमात्मा घट-घट वासी अन्तर्यामी एवं प्राणी मात्र का उर प्रेरक है। साधक अपने अभ्यास के द्वारा जिस भूमिका को पार कर जाता है उसके बाद उस परम गुरु परमात्मा की कृपा से उससे आगे की दूसरी भूमिका उसके सामने प्रकट हो जाया करती है। पूर्व भूमिका के दृश्य फिर उसके सामने नहीं आते। उदाहरणार्थ एक योगी जब वितर्कानुगत समाधि का अभ्यास करता है और निरन्तर अभ्यास के बल से उस भूमिका में लब्ध स्थितिक हो जाता है तो उसके अभ्यास में स्वत: ही अगली भूमिका के दृश्य आने लगते हैं और पीछे वाली भूमिका के दृश्य आने बन्द हो जाया करते हैं। इसी कारण श्री व्यासदेव जी महाराज ने अपनी पंक्तियों में इसका बिल्कुल स्पष्टीकरण कर दिया है। जैसे वितर्क विकल: सविचार: और उसके बाद विचार विकल: सानन्द: अर्थात् जिस समय योगी वितर्कानुगत समाधि में जय प्राप्त कर लेगा तो उसका अभ्यास समाप्त हो जाने के बाद विचारानुगम योग में वितर्कानुगम के दृश्य नहीं आयेंगे और जब द्वितीय श्रेणी विचारानुगम को अपने अभ्यास के बल से जीत लेगा तो स्वत: ही आनन्दानुगत समाधि का आरम्भ हो जायेगा और उसमें दोबारा विचारानुगत के दृश्य नहीं आयेंगे। ठीक इसी प्रकार आनन्दानुगत और अस्मितानुगत की बात भी है ज्यों-ज्यों योगी उच्चतर भूमिकाओं में जय प्राप्त कर लेता है त्यों-त्यों उसे निम्न श्रेणी की भूमिकाओं के अभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती और उस परम गुरु परमात्मा की कृपा से उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ता चला जाता है।

प्रश्न- हे गुरुदेव! आप कृपा करके यह बतलाइये कि साधक को यह योग किस प्रकार से प्राप्त होता है? क्या योगाभ्यासी की अपनी शक्ति पर यह सब साधना आधारित है या कोई और भी उपाय है? मैंने कई जगह पर ऐसा देखा है कि कितने ही साधकों को तो जन्म लेने मात्र से ही योग ज्ञान हो जाता है और कितने ही ऐसे हैं कि काफी प्रयत्न करने पर भी उनको स्थिति उपलब्ध नहीं हो पाती।

उत्तर - "हाँ पुत्र, ऐसा हुआ ही करता है। जो जन्म जन्मान्तर के अभ्यासी हैं चाहे वे अनन्त काल तक स्वर्ग में वास करके आये हों उनको जन्म ग्रहण करते ही अपने जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास की स्मृति कायम हो जाती है और बिना किसी के प्रयास ही वे लब्ध भूमिक हो जाया करते हैं। भगवान पतंजलि देव योग दर्शन में स्वयं ही इस बात का स्पष्टीकरण अपने शब्दों में करते हैं-

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्

अर्थात् विदेह एवं प्रकृति लीन योगियों को जन्म लेने मात्र से ही योग ज्ञान की प्रतीति हो जाया करती है।

इस सूत्र के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों को इस योग की प्रतीति दो ही प्रकार से होती है उनमें पहले प्राणी वे हैं जो अपने जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास से सम्प्रज्ञात:

योग की वितर्क और विचारानुगत समाधि में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुके है और बाद में अभी निर्बीज समाधि तक नहीं पहुंच पाये थे अभी उन्हें विवेक ख्याति नहीं हुई थी इसी अवस्था में ही उनका देहपात हो गया। ऐसे योगी दो प्रकार के होते है – (1) विदेह (2) प्रकृति लीन

1) विदेहः – वे कहलाते है जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल महाभूतों का और उनके विशेषों का पूर्ण साक्षात्कार कर चुके है। इसलिये वे शरीर की असलियत को समझ करके देहाभिमान से शून्य हो गये है और इतनी साधना के बाद उनका शरीर छूट गया और वे संप्रज्ञात योग की आगे की सीढ़ियों तक नहीं पहुंच सके, अतः वे लोग विदेह कहलाते है और यह देव कोटि में माने जाते है।

2) प्रकृति लीनः– वे योगी होते है जो स्थूल महाभूतों और उनके गुणों का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए निर्विचार समापत्ति में पंच तन्मात्र, अहंकार और महत्तत्व और प्रकृति का साक्षात्कार कर चुके है तथा प्रकृति के इन सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार करते हुए इन्हीं में लीन रहे है आगे की भूमिकाओं को तय नहीं कर पाये तथा अचानक देहपात हो गया इसलिए ये प्रकृति लीन कहलाते हैं। ये प्राणी भी देव कोटि में गिने जाते है इसलिए भगवान व्यासदेव जी ने इन लोगों के लिए–

विदेहानां भव प्रत्ययः तेहि स्वसंस्कार मात्रोपयोगेन चित्तेन पदमिवानु भवन्तः स्वसंस्कार विपाकं तथा जातीय कमीत वाहयन्ति तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृति लीने कैवल्य पदमिवानुभवन्ति यावन्न पुनरावर्त्ततेऽधिकार वशाच्चित्तमिति कैवल्य पदमिवानुभवन्ति।

कह कर भगवान व्यासदेव जी ने इन्हे मुक्ति पद में तो नहीं माना किन्तु मोक्ष जैसी स्थिति को ये लोग प्रकृति लीन होते हुए भी मोक्ष पद जैसा समझते है क्योंकि अभी इनका ग्रंथि भेद नहीं हुआ अर्थात् विवेक ख्याति को प्राप्त नहीं हुए। इसलिए इनका चित्त साधिकार है और अधिकार वश इन लोगों का संसार में जन्म होता है क्योंकि पिछले जन्म जन्मान्तरों में इनकी योग में ऊँची प्रगति रही थी इसलिए बहुत लम्बे समय तक ये विदेह प्रकृति लीन रहते हुए भी अपने आपको मुक्त आत्माओं की तरह अनुभव करते रहे थे। बुद्धि आल्हाद, आमोद प्रमोद आदि विशेष भावों मे लीन हुए अपने आपको आनन्द मग्न मोक्ष रूप देखते रहे थे किंतु विवेक ज्ञान के हुए बिना इनका चित्त साधिकार है, इसलिए इन्हे संसार में दोबारा जन्म लेना पड़ता है।

और जन्म से ही इनकी पूर्व जन्म जन्मान्तरों में जो अभ्यास किया था उसकी प्रतीति होने लगती है और फिर उस स्थिति को पा करके जल्दी ही अपने पूर्व लक्ष्य को प्राप्त कर लेते है। इन लोगों की कुछ हानि नहीं हुई क्योंकि ये विदेहावस्था व प्रकृतिलीनावस्था में परमानन्द में रहे तथा जन्म लेने पर अनेक जन्मों में किया गया अभ्यास सामने आया और पुनः उसी योग समाधि में प्रवृत्त हो गये। इसी प्रकार का प्रश्न गीता के छठवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण जी से अर्जुन ने प्रश्न किया–

अयतिः श्रद्धयापेतो योगाच्चलित मानसः। अप्राप्य योग संसिद्धि कांगतिं कृष्ण गच्छति। कच्चिन्नोभय विभ्रष्टाश्छिन्ना भ्रमिव नश्यति। अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्राह्मणः पथि, एतन्मे संशय कृष्ण–छेत्तुर्महईस्य शेषतः। त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्तानह्युपपद्यते।

अर्थात् अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण जी से प्रश्न करता है कि हे श्रीकृष्ण जो व्यक्ति श्रद्धा से युक्त है और अपने आप को काबू में नहीं रख सका है और योगाभ्यास करते–करते जिसका मन विचलित हो गया है वह योग सिद्धि को न पा करके किस गति को प्राप्त होता है? कदाचित उभय भ्रष्ट हो करके फटे हुए बादल की तरह नष्ट भ्रष्ट तो नहीं हो जाता क्योंकि अभी उसने अपने स्वरूप में स्थिति नहीं पाई और ब्रह्म ज्ञान को नहीं पा सका। मेरे इस संशय को नाश करने वाला आपके अतिरिक्त हे श्रीकृष्ण दूसरा कोई नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा–

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। न हि कल्याण कृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। प्राप्य पुण्य कृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीं समाः। शुचीनां श्री मतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्। एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्। तत्र तम बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम्। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन। पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः। जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्माति वर्तते।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्बिषः।
अनेक जन्म सं सिद्धस्ततो–याति परां गतिम्।।

भगवान श्रीकृष्ण जी उत्तर देते हैं कि हे अर्जुन! ऐसे पुण्यात्माओं का इस लोक व परलोक में कहीं भी पतन नहीं होता। कोई भी शुभ कर्म करने वाला दुर्गति को प्राप्त नहीं हो सकता। वे लोग पवित्र पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त होकर बहुत समय तक वहाँ रह कर पुनः पवित्र श्रीमानो के घर में ही जन्म ग्रहण करते है या बुद्धिमान योगियों के घरों में ही जन्म लेते हैं। इस मनुष्य लोक में इस प्रकार का जन्म लेना भी अत्यन्त दुर्लभ है और ऐसा जन्म हो जाने के बाद उन योगियों को अपना पौर्वदेहिक बुद्धि से योग प्राप्त होता है और उस बुद्धि संयोग को पाकर वे लोग पुनः सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं, क्योंकि पूर्व जन्म में उन्होंने इस प्रकार का अभ्यास किया था इसी कारण से स्वतः वे समाधि मार्ग में लग जाते हैं और अभ्यास करते–करते अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

भाव - प्रसून

– डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज, नई दिल्ली

तेरे दर पर आ गये हैं, नाथ ! दूर न कीजिए।
आश लेकर आये हैं हम आप ना ठुकराइये।।
ठोकरें खायीं बहुत हैं, जग के छल पाखण्ड पर।
हर कदम पर खाइयाँ हैं, झूठ के व्यवहार पर।
मार्ग दर्शन कर दो गुरुवर। यूं ही ना टरकाइये।।
तेरे दर पर आ गये हैं, नाथ ना ठुकराइये।।
दर अनेकों हमने देखे, ऐसा दर कोई नहीं।
भक्त, योगी लाख देखे, आप सा कोई नहीं।।
मेरे आनन्द कन्द गुरुवर अब निराश न कीजिए।
तेरे दर पर आ गये हैं नाथ ! दूर न कीजिए।
जग की ऐसी रीति देखी, स्वार्थमय सब प्रीति देखी
स्वार्थ बिन अद्भुत अनोखी आपकी ही प्रीति देखी।
इसलिए आयी हूँ दर पर नाथ! 'ना' मत कीजिए।
तेरे दर पर आ गये हैं नाथ ! दूर न कीजिए।।
आपने लाखों हैं तारे, ऐसा हमने है सुना।
क्या कमी मुझको बता दो, कर रहे क्यों अनसुना।
जैसी भी हूँ आपकी हूँ नाथ! अब अपनाइए।।
आश लेकर आयी ' सरिता' नाथ ना ठुकराइये।।
दूर से हम पास आये, नाथ! ना मत कीजिए।
तेरे दर पर आ गये हैं नाथ दूर न कीजिए।।

प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्य की सुरक्षा

– डॉ. नरेश झा

मानव–जीवन की सुरक्षा तथा आरोग्यप्राप्ति के लिए हमारे तप:पूत ऋषि–महर्षियों ने अनेक उपाय शास्त्रों में निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायाम की साधना भी एक महत्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए ही नहीं अपितु शरीर की शुद्धि तथा आरोग्य–लाभपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए भी है। इसकी उपयोगिता तो इसी से सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातंजलादि योग–ग्रन्थों, चिकित्साग्रन्थों तथा प्राय: समस्त पुराणों में अनेकत्र चर्चित है। श्रौत–स्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्ड के प्रारम्भ में प्राणायाम–विधान की आवश्यकता होती है; क्योंकि दैनिक कृत्य–सन्ध्या–वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदि में प्रथमत: प्राणायाम का ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी प्रयोजन के लिए ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीर की शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति भी होती है।

अत: इस महिमामय शरीर–रक्षक प्राणायाम के विषय में जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानव का पुनीत कर्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदों के योग से बना है–प्राण और आयाम। इन दोनों पदों में दीर्घसन्धि करने पर प्राणायाम शब्द की निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्द का अर्थ है– अपने शरीर से उत्पन्न वायु और आयाम का अर्थ है– निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राणवायु को रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणों में कहा गया है कि–

प्राण: स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्।।

अर्थात् प्राणवायु का निरोध करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिए। पातंजल योगदर्शन में इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।।

यहाँ आशय यह है कि पद्मासनादि सुस्थिर आसन में स्थित होकर बाह्य वायु का आचमन–श्वास और कोष्ठगत वायु का नि:सारण–प्रश्वास, इन दोनों का गति–विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायाम की सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षण के द्वारा कुम्भक में तो दोष नहीं है, किंतु पूरक और रेचक में आये अतिव्याप्ति दोष के निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास–प्रश्वासरूप विशिष्टाभाव

यह जोड़ना चाहिए।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणों में इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओं में प्रथम का ही आयाम–निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है कि पाँचों वायुओं का प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राण में ही हो। कहीं पाँचों में प्राथमिक दो प्राण–अपानवायु का आयाम और कहीं पाँचों वायुओं का एक स्थान में धारण प्राणायाम माना गया है।

इतना ही नहीं, कहीं–कहीं तो दस प्रकार के वायु का क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसों का प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायाम का विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्निपुराणों में केवल प्राण के ही आयाम से निर्दिष्ट है।

बौधायन धर्मसूत्र–वृत्ति में श्वास–निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है। इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्दमार्कण्डेय–पुराणों में प्राण–अपान–वायु का निरोध प्राणायाम कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानों में प्राणायाम का लक्षण इस प्रकार–

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।

प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।

प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।

अब आइये– प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान– इन पाँच वायुओं के निरोध पर विचार करें। जैसा कि विश्वामित्रकल्प में निर्दिष्ट है–

नासिकापुटमङ्गुल्या पंचभिर्वायुरोधनैः।

शनैः शनैस्तु निःशब्दः प्राणायामो निबोधयेत्।।

अर्थात् अंगुली से नासिका–पुट को बंदकर पाँच–वायु (प्राणादि) के निरोध से धीरे–धीरे निःशब्द होने को प्राणायाम जानना चाहिए।

इन पाँच प्रधान वायुओं के अतिरिक्त वेदव्यासजी ने शिव और अग्निपुराण में शरीर–संचालन–हेतु पाँच और नवीन वायुओं का समावेश किया है, सब मिलाकर दस वायु हो जाते हैं। उपर्युक्त पाँचों के अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय नामक पाँच वायु शरीर में विभिन्न कार्यों के लिये प्रवाहित होते हैं। इनमें धनंजय वायु शरीर में सर्वव्यापी है। इनका क्रम से अभ्यास करने पर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। इसकी पुष्टि स्कन्दपुराण से भी होती है। वहाँ कहा गया है कि –

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशे तु धारणम्।

गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते।।

अर्थात् सब ओर विचरण करने वाले प्राणादि वायु का गुरु के द्वारा उपदिष्ट रीति से जो एकदेश में धारण किया जाय, वही प्राणायाम है। अतएव हठयोगप्रदीपिकाकार ने कहा कि –

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।।

अर्थात् जब तक शरीर में प्राणादि वायु स्थित है, तभी तक जीव का जीवन है। प्राणवायु के निकल जाने पर मरण सुनिश्चित है, अतः वायु का निरोध करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में योगशास्त्र का उद्धरण देते हुए धर्म–विज्ञान में कहा गया है कि प्राणादि वायु शरीर की प्रधान शक्तियाँ होती है, वे ही संसार के रक्षक हैं, उन्हें वश में करने पर अन्य सब दोष स्वतः ही जीर्ण हो जाते हैं। ऐसे प्राण स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार के होते हैं। इन प्राणों के ऊपर विजय प्राप्त करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम की उपयोगिता तथा उससे शारीरिक स्वास्थ्य (आरोग्य) – लाभ

शरीर की रक्षा के लिए जिस प्रकार अन्न की उपयोगिता है, शरीरस्थ रोगनाश के लिए जैसे औषधियों का विनियोग होता है, उसी प्रकार शरीरस्थ बाहरी और भीतरी (बाह्याभ्यन्तर) रोगों के समूल नाश के लिए प्राणायाम का प्रयोग होता है।

जैसा कि कहा भी गया है–

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः।।
हिक्का कासश्च श्वासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यक्तिक्रमात्।।

अर्थात् समुचित प्राणायाम द्वारा सभी रोगों का नाश हो जाता है और अविधिपूर्वक प्राणायाम के अभ्यास से सब रोग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें विशेष रूप से हिचकी, खाँसी और श्वास (साँस) –का फूलना, सिर, कान एवं नेत्र में वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस आशय की पुष्टि बृहन्नारदीय पुराण से भी होती है।

यथा–

शनैः शनैर्विजेतव्याः प्राणाः मत्तगजेन्द्रवत्।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः।।

आशय यह है कि मतवाले हाथी के समान प्राणायाम करते समय प्राण (वायु) को अभ्यास द्वारा धीरे–धीरे जीतना चाहिए, अन्यथा भयंकर महारोग होने की सम्भावना रहती है।

योगशास्त्रानुमोदित पद्धति से तथा गुरु के द्वारा उपदिष्ट परम्परा से किये गये प्राणायामों से सब रोग नष्ट हो जाते हैं और यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो रोग होना सुनिश्चित है।

अतः प्राणायाम करने में प्राचीन परम्परा का पालन आवश्यक है। प्राचीन परम्परा के पालन में स्थान और काल आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है–

आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायामे च साधयेत्।।

अर्थात् प्राणायाम–साधना में उपयुक्त स्थान, काल, परिमित आहार और नाडी–शुद्धि (वात–पित्त–कफ की) आवश्यक है।

रोग–नाश के अतिरिक्त मानसिक संतुलन रखने में भी प्राणायाम का महान् उपयोग होता है। प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से चित्त में एकाग्रता आती है और इसके लिए **पातंजलोक्त 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य'** अर्थात् कोष्ठगत वायु का नासिक (नाक) के पुटों के द्वारा विशेष प्रयत्न से प्रच्छर्दन– वमन, विधारण– विशेष रूप से धारण करके प्राणायाम करें। मनुस्मृति, अमृतनादोपनिषद्, स्कन्द, ब्रह्म और श्रीमद्भागवतादि मान्य ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में भूयसी चर्चा की गयी है।

प्राचीन काल में प्राणायाम के बल से ही ऋषिगण दीर्घजीवी हुआ करते थे। महर्षि अत्रि ने ऋक्षकुल पर्वत पर सौ वर्ष तक प्राणायाम के बल से केवल वायु–पान करते हुए एक पैर पर स्थित होकर तपस्या की थी। जैसा कि श्रीमदभागवत तथा घेरण्ड संहिता में कहा गया है–

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः।।

प्राणायामात् खे गत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी।।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अर्थात् प्राणायाम से आकाशगमन की शक्ति आती है, प्राणायाम से समूल रोग– नाश होता है, शक्ति बढ़ती है, मानसिक संतुलन ठीक रहता है,? चित्त में आनन्द की प्राप्ति होती है और प्राणायामी सब प्रकार से नीरोग रहते हुए सुखी रहता है।

इतना ही नहीं, प्राणायाम के सेवन से शरीर में फेफड़े (फुफ्फुस) की शक्ति बढ़ती है, रुधिर की शुद्धि होती है। समस्त नाड़ी –चक्रों में चैतन्य आता है।

ऐसे प्राणदायक प्राणायाम के सेवन से स्वस्थ एवं नीरोग रहकर पुरुषार्थचतुष्टय– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर मानव–जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

स्वस्थ रहने की रामबाण दवा

चौरासी लाख योनियों से भटकता हुआ प्राणी भगवत्कृपा से मनुष्य योनि प्राप्त करता है। मानव–जीवन का एकमात्र उद्देश्य है – अपना कल्याण करना अर्थात् जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त होना। मनुष्य–योनि के अतिरिक्त सभी योनियों में जीव अपने कर्मानुसार केवल भोग भोगता है। मात्र मनुष्य को ही विवेक और कर्म करने की सामर्थ्य ईश्वर कृपा से प्राप्त है। पर यह सामर्थ्य भी पूरी तरह सफल तभी होता है, जब शरीर और मन– दोनों पूर्ण स्वस्थ होते हैं। इसके लिए व्यक्ति को सावधान रहने की आवश्यकता है। शरीर की प्रकृति तो स्वस्थ रहने की ही है, हम अपनी असावधानी के कारण अस्वस्थ हो जाते हैं। कभी–कभी प्रारब्धवशात् अपने पूर्वकृत पापों के कारण भी व्यक्ति आकस्मिक रूप से किसी–न–किसी रोग से ग्रस्त हो जाता है।

अपने शास्त्रों में ऋषि–महर्षियों द्वारा सदाचार और शौचाचार के अन्तर्गत मानव मात्र के लिए जीवनचर्या और दिनचर्या प्रस्तुत की गयी है, जिसका पालन कर्तव्यबुद्धि से करने पर लोक–परलोक दोनों सुधर सकते हैं अर्थात् लोक में तो व्यक्ति स्वस्थ रहकर सुखी हो सकता है और परलोक में पुण्य की प्राप्ति कर अपने कल्याणपथ का पथिक बन सकता है। वास्तव में अपने शास्त्रों में कर्तव्याकर्तव्य के जो विधान हैं, वे भगवदाज्ञा होने के कारण विश्वासपूर्वक आस्था के साथ पालन करने पर लोक में स्वास्थ्य आदि के लिये परम उपयोगी होते हुए मनुष्य को भगवत्प्राप्ति की सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

'आचारः परमो धर्मः' – आचार–विचार परम धर्म है। सदाचार में लगे मनुष्य का शरीर स्वस्थ, मन शान्त और बुद्धि निर्मल होती है एवं उसका अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है। शुद्ध अन्तःकरण ही वस्तुतः भगवान के चिन्तन और ध्यान के योग्य होता है, उसी में भगवान का स्थिर आसन लगता है। इसलिए मनुष्य को शास्त्रोक्त आचार जानना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए। मनु महाराज कहते हैं–

'श्रुति और स्मृति में कथित अपने नित्यकर्मों के अंगभूत धर्म का मूल–सदाचार का सावधानीपूर्वक सेवन करना चाहिए। आचार–धर्म का पालन करने से मनुष्य आयु, इच्छानुरूप संतति और अक्षय धन को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, सदाचार से अल्पमृत्यु आदि का भी नाश होता है। जो पुरुष दुराचारी है, उसकी लोक में निन्दा होती है, वह सदा दुःख भोगता रहता है तथा रोगी और अल्पायु (कम उम्रवाला) होता है। विद्या आदि सब गुणों से हीन पुरुष भी यदि सदाचारी और श्रद्धावान् तथा ईर्ष्यारहित होता है तो वह भी सौ वर्षों तक जीता है।

यहाँ श्रुति–स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों और वैद्यक–सिद्धान्तों के आधार पर

तथा वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शास्त्रोक्त जीवनचर्या तथा दिनचर्या प्रस्तुत है। जिसका पालन करने पर स्वास्थ्य आदि भौतिक लाभ के साथ–साथ आध्यात्मिक और पारमार्थिक लाभ की प्राप्ति भी हो सकेगी।

प्रातः – जागरण : पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए कल्याणकारी व्यक्ति को प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय से (तीन घण्टे से डेढ़ घण्टे तक) पूर्व शय्यात्याग करना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त की बड़ी महिमा है। इस समय उठने वाले का स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है। जो सूर्य उगने के समय सोता है, उसकी उम्र और शक्ति घटती है तथा वह नाना प्रकार की बीमारियों का शिकार होता है।

प्रातःकाल उठते ही शयनशय्या पर सर्वप्रथम करतल (दोनों हाथ की हथेलियों) के दर्शन का विधान है। करतल का दर्शन करते हुए निम्नलिखित श्लोक पढ़ना चाहिए–

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्।।

इस श्लोक में धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी तथा विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती और कर्मक्षेत्र के अधिष्ठाता ब्रह्मा की स्तुति की गयी है। इस मन्त्र का आशय है कि 'मेरे कर (हाथ) के अग्रभाग में भगवती लक्ष्मी का निवास है, कर (हाथ) के मध्यभाग में सरस्वती तथा कर (हाथ) के मूलभाग में ब्रह्मा निवास करते हैं।' प्रभातकाल में मैं अपनी हथेलियों में इनका दर्शन करता हूँ। इससे धन तथा विद्या की प्राप्ति के साथ–साथ कर्तव्यकर्म करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् वेदव्यास ने करोपलब्धि को मानव का परम लाभ माना है। इस विधान का आशय यह भी है कि प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम दृष्टि और कहीं न जाकर अपने करतल में ही देव–दर्शन करे, जिससे वृत्तियाँ भगवच्चिन्तन की ओर प्रवृत्त हों। यथासाध्य उस समय भगवान् का स्मरण और ध्यान भी करना चाहिए तथा भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि दिनभर मेरे में सुबुद्धि बनी रहे। शरीर तथा मन से शुद्ध सात्विक कार्य हों, भगवान् का चिन्तन कभी न छूटे। इसके लिए भगवान् से बल माँगे और आत्मा द्वारा यह निश्चय करें कि आज दिनभर मैं कोई भी बुरा कार्य नहीं करूंगा। भगवान् को याद रखते हुए भले कार्यों को ही करूँगा।

शय्या से भूमि पर पाँव रखने के पूर्व निम्नलिखित श्लोक के द्वारा पृथ्वीमाता की प्रार्थना करनी चाहिए–

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

इस श्लोक में धरा (धरती माता) को भगवान् विष्णु की पत्नी के रूप में सम्बोधित किया गया है तथा पादस्पर्श के लिए उनसे क्षमा प्रार्थना की गयी है।

उषःपान – प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व मल–मूत्र के त्याग करने से पहले जल पीने की

भी विधि है। रात्रि में ताम्रपात्र में ढककर रखा हुआ जल, प्रातःकाल कम–से–कम आधा लीटर तथा सम्भव हो तो सवा लीटर तक पीना चाहिए, इसे 'उष:पान' कहा जाता है। इससे कफ, वायु एवं पित्त–त्रिदोष का नाश होता है तथा व्यक्ति बलशाली एवं दीर्घायु हो जाता है। दस्त साफ होता है, पेट के विकार दूर होते हैं। बवासीर, प्रमेह, मस्तकवेदना, शोथ और पागलपन आदि रोग मिट जाते हैं, बल, बुद्धि और ओज बढ़ता है।

मल–मूत्र–त्याग– इसके बाद मल–मूत्र का त्याग करना चाहिए। मल–मूत्र का त्याग करते समय सिर को कपड़े से ढक लेना चाहिए तथा ऊपर–नीचे के दाँतों को जोर से सटाकर रखना चाहिए। इससे दाँत बहुत मजबूत होते हैं और बहुत दिनों तक चलते हैं। दाँतों की कोई बीमारी नहीं होने पाती। मल–मूत्र का त्याग करते समय मौन रहना चाहिए। चोटी (शिखा) खुली रखनी चाहिए एवं ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिए। यदि कब्ज अधिक हो तो कब्ज दूर करने के उपचार, आहार आदि के द्वारा अथवा सामान्य औषधि के द्वारा कर लेना चाहिए। सामान्यतः पेशाब करके पानी से मूत्रेन्द्रिय को जरूर धोना चाहिए। मल–त्याग के बाद मिट्टी से गुदा–लिंग आदि जरूर धो लें, इससे बवासीर की बीमारी नहीं होती। लिंग को एक बार, गुदा को कम–से–कम तीन बार मिट्टी लगाकर धो लेना चाहिए। बायें हाथ को दस बार और दोनों हाथों को मिलाकर सात बार मिट्टी लगाकर अच्छी तरह धोयें तथा पैर भी धोने चाहिए। शौच के बाद बारह कुल्ले तथा लघुशंका के बाद चार कुल्ले करने का विधान है। यह क्रिया शौचाचार के अन्तर्गत आती है।

मनुष्य को किन वेगों को रोकना चाहिए तथा किन वेगों को नहीं रोकना चाहिए– इस सम्बन्ध में आयुर्वेद में कहा गया है कि लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहंकार, निर्लज्जता, अतिराग, दूसरे का धन लेने की इच्छा आदि मानसवेगों को रोकना चाहिए, किंतु मल–मूत्रादि के वेग को रोकना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

दन्तधावन – शौचनिवृत्ति के पश्चात् व्यक्ति को दातौन तथा मंजन से दाँतों को साफ करना चाहिए। आजकल दाँतों को साफ करने के लिए ब्रश का प्रयोग लोग अधिक करते हैं, परंतु नीम तथा बबूल आदि की दातौन दाँतों की सुरक्षा के लिए अधिक लाभप्रद है। रविवार, एकादशी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, व्रत और श्राद्धादि दिनों में दातौन करने का निषेध है। अतः इन दिनों केवल शुद्ध मंजन से ही दाँत साफ करना श्रेयस्कर है। दाँत साफ करने के बाद जीभी से जीभ भी साफ करनी चाहिए।

क्रमशः

गुरु – शिष्य परंपरा पुनर्जीवित हो : नेहरू

आपने कहा- 'गुरुदेव के आदर्श अभी तक अधूरे पड़े हैं। उन अधूरे आदर्शों को पूरा करना है। विश्व भारती से जो सम्बन्धित हैं, उनका अब यह कर्तव्य हो जाता है कि वे विश्वभारती के आदर्शों और सिद्धान्तों को सही मार्गों द्वारा विकसित और क्रियान्वित करें। मुझे आशा है कि विश्वभारती संसार के विभिन्न भागों से आये छात्रों को ऐक्य-सूत्र में सम्बद्ध कर अपने पुण्य कार्य को जारी रखेगी।'

आधुनिक युग में गुरु-शिष्य का जो सम्बन्ध है, उसकी ओर संकेत करते हुए श्री नेहरूजी ने कहा कि आज जब शिक्षकों एवं छात्रों के सम्बन्ध को देखता हूँ तो बड़ा दु:ख होता है। यह कितना आश्चर्य का विषय है कि आज के छात्र अपने शिक्षकों को शत्रु समझते हैं। शिक्षकों के साथ भी यही बात पायी जाती है। कभी-कभी विश्वविद्यालयों में भी हड़तालें होती हैं। यह कितना दु:खद विषय है। जिस तरह फैक्टरियों में मजदूर वेतन-वृद्धि के लिए हड़ताल करते हैं, उसी तरह इन पवित्र प्रतिष्ठानों में भी हड़तालें की जाती हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा का प्रचार कैसे हो सकता है? जब तक भारत में पुन: गुरु-शिष्य का प्राचीन सुमधुर सम्बन्ध स्थापित नहीं हो जाता, तब तक शिक्षा का विकास सम्भव नहीं है। इस दिशा में विश्व भारत विद्यागृह एक आदर्श उपस्थित करता है।

'विद्यालयों का कार्यक्षेत्र केवल छात्रों को पास कराने तक ही सीमित नहीं है। किताबी-ज्ञान देना ही उनका कर्तव्य नहीं है, अपितु छात्रों का सर्वांगीण विकास करना उनका कर्तव्य है। छात्रों को मानसिक विकास करने में सहायता दी जानी चाहिए।'

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

SEPTEMBER 2011

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सेवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्रांड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आरक्षण (स्थान क्रय) का विज्ञापन
2. मेटर बॉक्सों पर प्रचार का आयोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पोस्ट बाक्सों पर प्रचार का आयोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 6.40 प्रति वर्ग सेन्टि प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर की पासों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु. 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्डों के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन, दर रु. 3/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :- योगाधीश्वर अनन्तश्री मन्दमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. धामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र.(डॉ.) धामलाल शर्मा